भारत सरकार

भारत

का

विधि आयोग

निष्क्रिय इच्छा मृत्यु – पुनर्विचार

रिपोर्ट सं. 241

अगस्त, 2012

न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी
भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग

नई दिल्ली

11 अगस्त, 2012

प्रिय मंत्री सलमान खुर्शीद जी,

तत्कालीन विधि मंत्री द्वारा प्रेनित डी. ओ. पत्र सं.17(9)/2011–एल.आई.–1251 तारीख 20.04.2011 द्वारा, विधि आयोग से "विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट पर विचार करते हुए इच्छामृत्यु पर विधान बनाने की संभाव्यता पर अपनी विचारित रिपोर्ट देने के लिए" कहा गया । यह पत्र **अरुणा रामचन्द्र शानबाग** [(2011) 4 एस. सी. सी. 454] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप लिखा गया । उच्चतम न्यायालय ने लगातार निन्क्रिय दशा या अपरिवर्तनीय मूर्च्छा या विक्षिप्त रोगियों जैसे अक्षम रोगियों के संबंध में निन्क्रिय इच्छामृत्यु वि-नय पर विधि अधिकथित किया और पैरा 124 में मत व्यक्त किया : "विशाखा (1997) 6 एस. सी. सी. 241 वाले मामले में प्रयुक्त तकनीक का अनुसरण करते हुए, हम इस संबंध में ऐसी विधि अधिकथित कर रहे हैं जो तब तक विधि बनी रहेगी जब तक संसद इस वि-नय विधि नहीं बनाती ।" उक्त निर्णय के पैरा 135 में ऐसा ही मत दोहराया गया था । उच्चतम न्यायालय ने निन्क्रिय इच्छामृत्यु अर्थात् किसी अक्षम रोगी की बाबत सुरक्षोपाय के अध्यधीन रहते हुए प्राण रक्षक उपायों को वापस लेने पर उच्च न्यायालय से अनुज्ञा अभिप्राप्त करने की शर्त के साथ अनुमोदन पर अपनी मोहर लगा दी है । उच्च न्यायालय को तीन चिकित्सा विशे-नज्ञों की समिति की राय की ईप्सा करनी चाहिए और रोगी के सगे नातेदारों और उनकी अनुपस्थिति में करीबी मित्र और राज्य को भी नोटिस दी जाए । उच्च न्यायालय की भूमिका को 'रा-ट्रपिता' जैसा बताया गया है ।

2. विधि आयोग पूर्व विधि आयोग और उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त

कार्यालय : भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली, 110001
निवास : 1, जनपथ, नई दिल्ली 110 001

मत से सहमत है कि निष्क्रिय इच्छामृत्यु को कतिपय सुरक्षोपायों के अध्यधीन रहते हुए अनुज्ञात किया जाना चाहिए । यह महसूस किया गया कि मानवीय दृष्टिकोण और ऐसे चिकित्सक जो प्राणांततः रुग्ण रोगियों के बेहतर हित में असलियत में कार्य करते हैं, को संरक्षण प्रदान करने के लिए भी प्रस्तावित विधि को आवश्यक समझा गया है । सुरक्षोपायों के संबंध में विधि आयोग ने सारतः उच्चतम न्यायालय के मतों की पुष्टि की है । तथापि, चिकित्सा विशेषज्ञों का पैनल तैयार करने और गठन के संबंध में हमने 196वीं रिपोर्ट में 17वें विधि आयोग द्वारा किए गए सुझावों का अनुसरण किया है ।

3. 196वीं रिपोर्ट में, 17वें विधि आयोग ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु अर्थात् ऐसे मर रहे रोगी (जो इच्छामृत्यु और सहायता प्राप्त आत्महत्या से भिन्न है) के प्राणरक्षक उपायों के हटाने का समर्थन करते हुए, "मरणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायों का संरक्षण) विधेयक, 2006" शीर्षक वाले विधेयक की रूपरेखा तैयार की । प्राणरक्षक प्रणालियों को हटाने के पूर्व उपचार कर रहे चिकित्सकों द्वारा अपनाए जाने वाले सुरक्षोपायों का भी आयोग द्वारा सुझाव दिया गया है । जहां तक सक्षम रोगी का संबंध है, आयोग ने मत व्यक्त किया कि उसे सतत चिकित्सा उपचार को हटाने का विनिश्चय करने का अधिकार है और उक्त विनिश्चय चिकित्सक पर आबद्धकर है और वह अनिच्छुक रोगी के लिए प्राण रक्षक प्राणालियों हेतु मजबूर नहीं कर सकता । उच्चतम न्यायालय ने भी यह स्पष्ट किया है कि भारत में, यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर और स्वेच्छया प्राण रक्षक चिकित्सा उपचार लेने से इनकार करता है तो यह अपराध नहीं है । अरुणा वाले मामले में चर्चा ऐसे गैर-स्वेच्छा निष्क्रिय इच्छमृत्यु के इर्द-गिर्द घूमती रही जो ऐसे रोगी को लागू होता है जो स्वयं के लिए विनिश्चित करने की स्थिति में नहीं है अर्थात् वह मूर्च्छा में या पी वी एस या इसी प्रकार की स्थिति में है । उच्चतम न्यायालय और विधि आयोग (196वी रिपोर्ट) दोनों ने एयरडेल वाले मामले में हाउस आफ लार्डस की राय का अवलंब लिया और विस्तार से उद्धृत किया जिसमें 'सर्वोत्तम हित' परीक्षण को प्राथमिकता दी गई है । हमने विशेषकर संविधान के अनुच्छेद 21 को दृष्टिगत करते हुए निष्क्रिय इच्छामृत्यु के औचित्य के पूरक कारण दिए हैं ।

4. मैं यहां यह उल्लेख करता हूँ कि विधि आयोग (196वी रिपोर्ट) की

सिफारिशों और उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के बीच मुख्य अन्तर इस बात में निहित है कि विधि आयोग ने उच्च नयायालय के समक्ष घो-णात्मक अनुतो-न चाहने के लिए समर्थ बनाने वाले उपबंध की अधिनियमिति का सुझाव दिया था जबकि उच्चतम न्यायालय ने अक्षम रोगी से प्राण रक्षक हटाने के विनिश्चय को प्रभावी बनाने के लिए उच्च न्यायालय से अनापपत्ति प्रमाणपत्र लेना आज्ञापक बनाया । उच्चतम न्यायालय के निर्णय अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा विशे-नज्ञों की समिति की राय अभिप्राप्त की जानी चाहिए जबकि विधि आयोग की सिफारिश के अनुसार, परिचर्या कर रहे चिकित्सा व्यवसायी को ऐसे रोगी से चिकित्सा उपचार रोकने/हटाने का विनिश्चय लेने के पूर्व चिकित्सा विशे-नज्ञों के पैनल से विशे-नज्ञ राय अभिप्राप्त करना होगा । ऐसी दशा में, नातेदार, चिकित्सा व्यवसायी, आदि समुचित घो-णात्मक अनुतो-न के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन करने के लिए स्वतंत्र होंगे । वर्तमान विधि आयोग यह महसूस करता है कि अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रक्रिया का पालन करना निरापद और वांछनीय है जिससे कि उच्च न्यायालय अनुमोदन लेना प्राण रक्षक उपायों को रोकने के लिए पूर्ववर्ती शर्त होगा ।

5. तदनुसार, व-र्ा 2006 में 17वें विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए प्रारूप विधेयक मरणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) में परिवर्तन किया गया है । विधेयक को रिपोर्ट के पैरा 13.1 से 13.7 में यथाउपदर्शित अनुसार परिवर्तित किया गया है । सिफारिशों का संक्षिप्तांश पैरा 14 पर है । पुनरीक्षित प्रारूप विधेयक उपाबंध-1 पर है । आयोग यथाशीघ्र उसके द्वारा सुझाए अनुसार विधि अधिनियमित करना वांछनीय समझता है जिससे कि अनिश्चितता को दूर किया जा सके और उच्चतम न्यायालय द्वारा विहित प्रक्रिया को परि-कृत किया जा सके ।

सादर

श्री सलमान खुर्शीद, संसद सदस्य
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री (पी. वी. रेड्डी)
शास्त्री भवन
नई दिल्ली ।

निष्क्रिय इच्छामृत्यु – पुनर्विचार

विषय सूची

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1	प्रस्तावना	6
2	विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट	8
3	निष्क्रिय इच्छामृत्यु – विधि आयोग और उच्चतम न्यायालय का इस संबंध में क्या मत था	10
4	मोटे तौर पर प्रश्न और हमारा दृष्टिकोण	11
5	17वें विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित विधेयक और उसके लक्षण	12
6	असमय (2011) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय	18
7	चिकित्सा आचार और चिकित्सक का कर्तव्य	24
8	17वें विधि आयोग द्वारा विश्लेषण	28
9	इच्छामृत्यु का विधिमान्यकरण – परिप्रेक्ष्य और विचार	31
10	क्या विधान आवश्यक है ?	35
11	निष्क्रिय इच्छामृत्यु – विमर्शित मुद्दे	35
12	उपशामक देखभाल	43
13	प्रारूप विधेयक में प्रस्तावित वर्तमान परिवर्तन	44
14	सिफारिशों का संक्षिप्तांश	50
	उपाबंध - 1 (आयोग द्वारा पुनः प्रारूपित विधेयक)	53
	उपाबंध - 2 (17वें विधि आयोग द्वारा पूर्व प्रारूपित विधेयक)	62

निष्क्रिया इच्छामृत्यु

पुनिर्वचार

1. प्रस्तावना

1.1 'यूथानीसिया' शब्द का व्युत्पन्न ग्रीक शब्द 'यू' और 'थैनोरोस' शब्द से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ 'अच्छी मृत्यु' है । दूसरे शब्दों में इसे दया मृत्यु कहा गया है । मरणांततः रुग्ण रोगी की मृत्यु को ऐसे रोगी के दुःख या पीड़ा से मुक्त कराने के लिए सक्रिय या निष्क्रिय साधनों के माध्यम से तीव्रतर करना है । यह प्रतीत होता है कि फ्रांसिस बेकन द्वारा 17वीं शताब्दी में शब्द का प्रयोग आसान, दर्द रहित और सुख मृत्यु के लिए निर्दिष्ट किया गया था जिसके लिए चिकित्सक का यह कर्तव्य और दायित्व था कि वह रोगी के शरीर की शारीरिक पीड़ा को दूर करे । इंग्लैंड में 'चिकित्सा नीति' पर हाउस आफ लार्डस चयन समिति ने यूथानीसिया को "किसी जीवन की असाध्य पीड़ा को मुक्ति दिलाने के व्यक्त आशय के साथ किए गए जानबूझकर हस्तक्षेप" के रूप में परिभाषित किया । यूरोपियन पालिएटिब केयर संगम के नीतिशास्त्र कार्य बल ने 2003 में यूथानीसिया पर चर्चा के दौरान स्पष्ट किया कि "चाहे गैर-स्वैच्छिक (जहां व्यक्ति सहमति देने में असमर्थ है) या अनैच्छिक (व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध) हो, व्यक्ति की सहमति के बिना व्यक्ति की चिकित्सीय मृत्यु यूथानीसिया नहीं है ; यह एक हत्या है, अतः, यूथानीसिया केवल स्वैच्छिक हो सकता है ।"

1.2 हम यहां "सक्रिय यूथानीसिया" से भिन्न निष्क्रिय यूथानीसिया (इच्छामृत्यु) पर विचार कर रहे हैं ह। **अरुणा रामचन्द्र शानबाग** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले के उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में अन्तर को उजागर किया गया है । सक्रिय इच्छामृत्यु में घातक तत्व अर्थात्, सोडियम पेंटाथाल से रोगी को सुई लगाना जैसे विनिर्दिष्ट कदम लेना अंतवर्लित है जो कुछ सेकन्डों में व्यक्ति को गहरी नींद में सुला देता है और दर्द के बिना निंद्रा में मर जाता है, इस प्रकार, यह मरणांततः रोगी की पीड़ा को दूर करने के लिए सकारात्मक कार्य द्वारा व्यक्ति का वध करने की कोटि में आता है ।

---

[1] (2011) 4 एस. सी. सी. 454.

जैसा उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले मत व्यक्त किया गया है, विधान द्वारा जहां अनुज्ञात है, के सिवाय संपूर्ण विश्व में (रोगी की इच्छा के बावजूद) यह अपराध समझा जाता है । भारत में भी, सक्रिय इच्छा मृत्यु अवैध है और भा. दं. सं. की धारा 302 या 304 के अधीन एक अपराध है । साहाय्य आत्महत्या भा. दं. सं. की धारा 306 (आत्महत्या का दु-प्रेरण[1]) के अधीन अपराध है । नि-क्रिय इच्छामृत्यु को अन्यथा नकारात्मक इच्छामृत्यु जाना जाता है । इसके अंतर्गत चिकित्सा उपचार रोक देना या प्राण चलने की जीवन रक्षक प्रणाली को रोक देना, एंटीबायोटिक को रोक देना जहां इसके बिना रोगी की मृत्यु हो जाने की संभावना है या मूर्च्छा के रोगी से हृदय-फेफड़ा मशीन को हटाना सम्मिलित है । नि-क्रिय इच्छामृत्यु कतिपय शर्तों और सुरक्षापायों का पालन करते हुए विधान के बिना भी वैध है । (अरुणा वाले मामले एस. सी. सी. के पैरा 39 द्वारा) । उच्चतम न्यायालय के उल्लेख के अनुसार, सक्रिय इच्छामृत्यु और नि-क्रिय इच्छामृत्यु के बीच अन्तर का मुख्य बिन्दु यह है कि सक्रिय इच्छामृत्यु में रोगी का जीवन समाप्त करने के लिए कुछ किया जाता है जबकि नि-क्रिय इच्छामृत्यु में ऐसा कुछ नहीं किया जाता है जिससे रोगी के जीवन को सुरक्षित रखा जाता हो । अरुणा वाले मामले के विद्वान् न्यायाधीश के शब्दों का उल्लेख करें तो नि-क्रिय इच्छामृत्यु में "चिकित्सक सक्रिय रूप से किसी का वध नहीं कर रहे हैं, वे केवल उसे बचा नहीं रहे हैं ।" न्यायालय ने सुस्प-टतः कहा "प्रायः जहां हम ऐसे किसी व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं जो दूसरों का जीवन बचाता है, सामान्यतः हम ऐसा करने में असफल रहने वाले किसी व्यक्ति की निंदा नहीं करते ।" उच्चतम न्यायालय ने इंगित किया कि इच्छामृत्यु के प्रस्तावकों के अनुसार इस बात पर विचार-विमर्श करते समय कि क्या सक्रिय इच्छामृत्यु को वैध बनाया जाए, नि-क्रिय इच्छामृत्यु के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है क्योंकि "आप किसी का प्राण बचाने की असफलता के लिए किसी को अभियोजित नहीं कर सकते ।" तब उच्चतम न्यायालय ने इस मत का खंडन किया कि अन्तर विधिमान्य है और ऐसा करते समय एयरडेल[2] वाले मामले में हाउस आफ लार्डस् के महत्वपूर्ण अंग्रेजी विनिश्चय का अवलंब लिया जिसे बाद में विस्तार से निर्दि-ट किया जाएगा ।

---

[1] 481 पर पूर्वोक्त.

[2] एयरडेल एन एच एस ट्रस्ट बनाम ब्लैंड (1993) 1 आल इं रि. 821.

1.3 निष्क्रिय इच्छामृत्यु का आगे स्वैच्छिक और गैर-स्वैच्छिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है । स्वैच्छिक इच्छामृत्यु वह है जहां रोगी से सहमति ली जाती है । गैर-स्वैच्छिक सुख मृत्यु में रोगी की दशा के कारण उदाहरणार्थ जब वह मूर्च्छा में है, सहमति अनुपलब्ध है । उच्चतम न्यायालय ने तब यह मत व्यक्त किया : "जहां पहले वाले मामले में कोई विधिक कठिनाई नहीं है वहीं बाद वाला कई कठिनाईयां पैदा करता है जिस पर हम विचार करेंगे ।" उच्चतम न्यायालय गैर-स्वैच्छिक निष्क्रिय इच्छामृत्यु वाले मामलों के बारे में चिन्तित था क्योंकि रोगी मूर्च्छा में होता है ।

2. विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट

2.1 भारत के विधि आयोग ने अपनी 196वीं रिपोर्ट[1] की अपनी आरंभिक टिप्पणी में ही साफ शब्दों में यह स्पष्ट किया था कि आयोग ने "यूथानीसिया" या "सहायता-प्राप्त आत्महत्या" पर विचार नहीं किया था जो विधि विरुद्ध है किन्तु आयोग भिन्न विषय अर्थात् मरणांततः रुग्ण रोगियों की जीवन रक्षक उपायों को रोकने पर विचार किया था और सभी देशों में सर्वतः ऐसे रोके जाने को विधिसम्मत माना जाता है । बार-बार आयोग द्वारा यह इंगित किया गया कि रोगियों के जीवन रक्षक प्रणाली का हटाया जाना इच्छामृत्यु और सहायता प्राप्त आत्महत्या से काफी भिन्न है और अंतर के बारे में अरुणा वाले मामले में सुनिश्चित रूप से फोकस किया गया है । अरुणा (पूर्वोक्त) वाले मामले में "निष्क्रिय इच्छामृत्यु" के सारगर्भित पद का उपयोग करना ठीक समझा गया ।

2.2 भारत के 17वें विधि आयोग ने इंडियन सोसाइटी आफ क्रिटिकल केयर मेडिसन, बम्बई, जिसने चिकित्सा और विधि विशेषज्ञों का एक सेमिनार आयोजित किया, के अनुरोध पर विषय को विचारार्थ उठाया । इसका उद्घाटन तत्कालीन केन्द्रीय विधि मंत्री द्वारा किया गया था । विधि आयोग ने रिपोर्ट तैयार करने के पूर्व विषय के विशद साहित्य का अध्ययन किया ।

2.3 आरंभिक अध्याय में, विधि आयोग ने यह भी स्पष्ट किया :

---

[1] मरणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण)

इस रिपोर्ट में हमारा यह मत है कि 'यूथानीसिया' और 'सहायताजन्य आत्महत्या' हमारी विधि के अधीन अपराध बना रहना चाहिए । अतः, हमारी जांच की क्षेत्र 'जीवन समर्थक उपयों का रोका जाना' की बाबत लागू विभिन्न विधि के सिद्धांतों तथा उस रीति और परिस्थितियों के सुझाव तक सीमित है जिससे या जिनमें चिकित्सा व्यवसायी जीवन समर्थक उपयों को रोक देने का निर्णय तब ले सकते हैं जब ऐसा करना रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में हो । इसके अतिरिक्त, यह भी प्रश्न उठता है कि किन परिस्थितियों में कोई रोगी उपचार लेने से इनकार कर सकता है और जीवन समर्थक उपायों के रोके जाने या हटा लिए जाने की मांग कर सकता है यदि ऐसा करना सज्ञान निर्णय पर आधारित है ।

2.4 माननीय मत्री जी को संबोधित तारीख 28 अगस्त, 2006 के अग्रेनित पत्र में विधि आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष और व्यक्त मतों को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है :

लगभग सौ व-र्न पूर्व, जब प्राणंततः रुग्ण रोगी को चिकित्सीय उपचार द्वारा जीवित रखने के कृत्रिम उपयों का, जिनके अन्तर्गत वेन्टीलेटरों और कृत्रिम रूप से भोजन प्रदान करके जीवित रखने के उपचारों के लिए औ-नधियों और औ-नधि तकनीक का आवि-कार नहीं हुआ था, ऐसे व्यक्ति प्राकृतिक कारणों से मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे । पर, आज स्वीकार किया जा चुका है कि प्राणांततः रुग्ण व्यक्ति को आधुनिक चिकित्सीय पद्धतियों से इन्कार कर दें तथा प्रकृति को अपना मार्ग अपनाने दें कि वे सामान्य विधि में अधिकार है जैसा कि प्राचीन समय में था । सभी देशों में यह एक सुनिश्चित विधि है कि प्राणांततः रुग्ण व्यक्ति, जो होश में है और सक्षम है, प्राकृतिक मृत्यु से मरने का 'सज्ञान निर्णय' ले सकता है और यह निर्देश दे सकता है कि उसे ऐसा चिकित्सीय उपचार न दिया जाए जिससे उसे दीर्घ जीवन मिलता हो । आजकल ऐसे अनेक रोगी हैं जो रोग की ऐसी स्थिति पर पहुंच चुके हैं जब वे अत्यन्त जानकार व्यक्तियों की चिकित्सीय राय में स्वस्थ्य नहीं हो सकते । किन्तु आधुनिक औ-नधियां और तकनीक ऐसे व्यक्तियों को दीर्घकाल तक जीवित रहने में समर्थ बना सकती है जिसका कोई प्रयोजन नहीं है

और ऐसे दीर्घकाल के दौरान रोगी को अत्यधिक दर्द और क-ट सहन करना पड़ सकता है । ऐसे अनेक रोगी दर्द और क-ट को कम करने के लिए पैलियेटिव केयर पसंद करते हैं तथा ऐसा चिकित्सीय उपचार नहीं चाहते जिससे केवल उन्हें दीर्घ जीवन प्राप्त हो गया या मृत्यु टलती रहेगी ।

2.5 एयरडेल वाले मामले में लार्ड गाफ के कथनानुसार : "वस्तुतः यह आधुनिक चिकित्सा तकनीक का विकास और विशि-टतया जीवन रक्षक प्रणालियों का विकास है, जो इस समय है वह पिछले समय की तुलना में काफी अधिक सुसंगत है ।" पी. वी.एस.रोगी के मामले में 1993 में व्यक्त मत वर्तमान समय के चिकित्सीय परिदृश्य को अधिक दृढ़ता से लागू होता है ।

3. निि-क्रिय इच्छामृत्यु – विधि आयोग और उच्चतम न्यायालय का इस संबंध में क्या मत था

3.1 ऐसे सक्षम रोगी और अक्षम रोगी जो मरणांततः रुग्ण है, दोनों की दशा में भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी 196वीं रिपोर्ट में निि-क्रिय इच्छामृत्यु की वकालत की गई है । अक्षम रोगियों की दशा में, परिचर्या कर रहे चिकित्सा व्यवसायी को ऐसे तीन चिकित्सा विशे-ाज्ञों की राय अभिप्राप्त करनी चाहिए जिनके नाम अनुमोदित पैनल पर हैं और इसके पश्चात् वह रोगी (यदि सचेत है) और अन्य सगे नातेदारों को सूचित करेगा । तब वह जीवन रक्षक प्रणाली के समापन सहित चिकित्सा उपचार को रोकने या हटाने के पहले 15 दिनों तक प्रतीक्षा करेगा । यदि 15 दिन का समय रोगी (यदि सचेत है) या नातेदार या संरक्षण को इस घो-णात्मक अनुतो-न की ईप्सा करने के लिए उच्च न्यायालय में मूल अर्जी दायर करने हेतु समर्थ बनाने के लिए अनुध्यात किया गया था कि चिकित्सा उचार रोकने की बाबत चिकित्सा व्यवसायी/अस्पताल द्वारा प्रस्तावित कार्य या लोप विधि सम्मत या विधि विरुद्ध है । तब उच्च न्यायालय अंतिम घो-णा करेगा जो सभी संबद्धों पर आबद्धकर होगा और किसी सिविल आपराधिक दायित्व से चिकित्सक या अस्पताल को संरक्षित रखने का प्रभाव रखेगा । अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय में अधिकथित सुरक्षोपायों के अधीन रहते हुए (गैर-स्वैच्छिक) निि-क्रिय इच्छामृत्यु पर अपने अनुमोदन की मोहर लगा दी है । सुरक्षोपायों के क्षेत्र में, उच्चतम न्यायालय ने विधि आयोग

द्वारा अपनाए गए दृ-टिकोण से भिन्न दृ-टिकोण अपनाया है । उच्चतम न्यायालय ने अरुणा वाले मामले में यह न्यायादेश दिया कि अक्षम रोगियों की दशा में सगे नातेदारों या करीबी मित्र या रोगी की परिचर्या कर रहे चिकित्सक/अस्पताल के स्टाफ द्वारा उच्च न्यायालय की विनिर्दि-ट अनुज्ञा अभिप्राप्त करनी चाहिए । ऐसा आवेदन फाइल किए जाने पर, उच्च न्यायालय को चिकित्सा प्राधिकारियों से परामर्श के पश्चात् उसके द्वारा तैयार किए गए पैनल से चयनित तीन विशे-ाज्ञों की समिति की राय लेनी चाहिए । रिपोर्ट के आधार पर और नातेदारों या करीबी मित्र की इच्छाओं पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय को अपना अधिमत देना चाहिए । पैरा 135 में यह घो-ित किया गया : 'इस वि-नय पर संसद द्वारा विधान बनाए जाने तक संपूर्ण भारत में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन किया जाए ।" पहले पैरा 124 में भी, विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा – "हम इस संबंध में विधि अधिकथित कर रहे हैं जो वि-नय पर संसद द्वारा विधि बनाए जाने तक विधि बनी रहेगी ।"

4. मोटे तौर पर प्रश्न और हमारा दृ-टिकोण

4.1 अब प्रश्न यह है कि क्या संसद को इच्छा व्यक्त करने में सक्षम और इच्छा व्यक्त करने में अक्षम दोनों तरह के मरणांततः रुग्ण रोगियों या संज्ञान विनिश्चय लेने के मामले में नि-क्रिय इच्छामृत्यु की अनुज्ञा देते हुए वि-नय पर विधि अधिनियमित करना चाहिए । यदि हां, तो विधान की क्या रूपात्मकताएं होनी चाहिए ? यही सटीक कारण है कि भारत सरकार ने विधि और न्याय मंत्री के माध्यम से मामला भारत के विधि आयोग को निर्दि-ट करने के पश्चात् माननीय मंत्री द्वारा संबोधित 20 अप्रैल, 2011 के पत्र में आयोग से "विधि आयोग की पूर्व 196वीं रिपोर्ट पर विचार करते हुए इच्छामृत्यु पर विधान बनाने की संभाव्यता पर अपनी विचारित रिपोर्ट देने" का अनुरोध किया गया ।

4.2 आगे कार्यवाही आरंभ करने के पूर्व, हमें यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि विधि आयोग ने अपनी 196वीं रिपोर्ट की सिफारिश करने के पूर्व व्यापक अध्ययन किया, मुद्दे के पक्ष और विपक्ष पर विचार किया और अपना नि-कर्-ा अभिलिखित किया जिसे विधायी अवसंरचना में डाला गया था । पांच वर्-ा पश्चात्, अरुणा वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय

ने निर्णय में परिकल्पित कतिपय सुरक्षोपायों और शर्तों के अध्यधीन रहते हुए निष्क्रिय इच्छामृत्यु को अनुमोदित करते हुए ऐतिहासिक निर्णय दिया । अन्य देशों में अभिप्राप्त करने की विधिक स्थिति, सर्वोत्तम चिकित्सा पद्धति और यू. के. और यू. एस. ए. में कई प्रामाणिक निर्णयों में अधिकथित विधि का विस्तृत प्रतिनिर्देश किया गया । उच्चतम न्यायालय और विधि आयोग ने विश्व के अधिकांश देशों की तरह सिद्धांततः निष्क्रिय इच्छामृत्यु को अनुज्ञात करने का पर्याप्त औचित्य महसूस किया । उच्चतम न्यायालय और आयोग ने इसे कोई अपराध नहीं माना और विधिक या संवैधानिक दृष्टिकोण से कोई आक्षेप नहीं पाया ।

4.3 जब तक अकाट्य कारण न हों – और हम सर्वोच्च न्यायालय और विधि आयोग द्वारा व्यक्त मत से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए कुछ नहीं पाते, अतः, मत स्वीकार किए जाने योग्य हैं । वहीं, हमने पूरे मामले पर नए सिरे से विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विनय पर विधान वांछनीय है । निष्क्रिय इच्छामृत्यु अनुमोदित करते हुए ऐसे विधान में ऐसे सुरक्षोपाय सम्मिलित किए जाने चाहिए जिनका पालन ऐसे रोगियों के मामले में किया जाए जो अपनी इच्छा व्यक्त करने या सहमति देने (असक्षम रोगी) की स्थिति में नहीं है । अपनायी जाने वाली प्रक्रिया और सुरक्षोपायों के संबंध में यह आयोग पूर्व विधि आयोग के मतों के अधिमानतः उच्चतम न्यायालय की राय को सारतः मानने के लिए आनत है । तथापि, हमने जहां तक उच्च न्यायालयों द्वारा नामित किए जाने वाले चिकित्सा विशेषज्ञों के पैनल की तैयारी और गठन का संबंध है, कतिपय परिवर्तन का सुझाव दिया है । विधि आयोग द्वारा अपनी 196वीं रिपोर्ट द्वारा प्रस्तावित कई अन्य उपबंधों को सफलतः अंगीकार किया गया है । एक पुनरीक्षित प्रारूप विधेयक वर्तमान आयोग द्वारा तैयार किया गया है जो इस रिपोर्ट में संलग्न है । हम समुचित स्थान पर अपने मतों और प्रस्तावित परिवर्तनों को स्पष्ट करेंगे ।

5. 17वें विधि अयोग द्वारा प्रस्तावित विधेयक और इसके लक्षण

5.1 हम विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट का विहंगम अवलोकन और "मरणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) विधेयक, 2006" (उपाबंध - 2 द्वारा) शीर्षक के अधीन विधि आयोग द्वारा विधान के मुख्य लक्षणों पर अपनी चर्चा आरंभ करेंगे । पुनरावृत्ति के जोखिम पर, हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि

(196वीं रिपोर्ट में) विधि आयोग की सिफारिशों और (तत्समय) उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के बीच मुख्य अंतर इस बात पर है कि विधि आयोग ने उच्च न्यायालय के समक्ष घो-णात्मक अनुतो-न चाहने के लिए समर्थकारी उपबंध की अधिनियमिति का सुझाव दिया है जबकि उच्चतम न्यायालय ने अक्षम रोगी के जीवन प्राणरक्षक को हटाने के विनिश्चय को प्रभावी बनाने के लिए उच्च न्यायालय से अनापत्ति प्रमाणपत्र लेने को आज्ञापक बनाया है । उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा विशे-ज्ञों की समिति की राय अभिप्राप्त करनी चाहिए जबकि विधि आयोग की सिफारिशों के अनुसार, परिचर्या कर रहे चिकित्सा व्यवसायी को ऐसे रोगी के चिकित्सा उपचार को रोकने/हटाने का विनिश्चय लेने के पूर्व अनुमोदित चिकित्सा विशे-ज्ञों के पैनल से विशे-ज्ञों की राय अभिप्राप्त करना होगा । ऐसी दशा में, नातेदार आदि, समुचित घो-णात्मक अनुतो-न के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

5.2 विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट में यह मूल सिद्धांत बताया गया है कि मरणांततः रुग्ण किन्तु सक्षम रोगी को प्राण रक्षक उपायों को बंद करने सहित उपचार से इनकार करने का अधिकार है और यह चिकित्सक पर बाध्यकर है, ''परंतु रोगी का विनिश्चय ''सज्ञान विनिश्चय'' है । 'रोगी' को मरणांततः रोग से पीड़ित व्यक्ति के रूप में परिभा-ित किया गया है । 'मरणांततः रोग' को भी धारा 2(ड) में परिभा-ित किया गया है । 'सक्षम रोगी' की परिभा-ा को 'अक्षम रोगी' की परिभा-ा द्वारा समझा जा सकता है । 'अक्षम रोगी' से ऐसा रोगी जो अवयस्क या विकृत चित्त व्यक्ति है या ऐसा रोगी अभिप्रेत है जो अपने चिकित्सीय उपचार के बारे में सुसंगत सूचना को समझने, विचार करने या प्रतिधारण करने में असमर्थ है या चित्त या मस्ति-क के कार्य करने में ह्रास या परेशानी के कारण 'सज्ञान निर्णय' करने में असमर्थ है या जो वाणी, संकेत या भा-ा या किसी अन्य रूप में चिकित्सा उपचार के संबंध में अपने सज्ञान निर्णय को संसूचित करने में असमर्थ है । (विधेयक,2006 की धारा 2(ध) द्वारा) । 'चिकित्सा उपचार' को धारा 2(झ) में मरणांततः रोग से पीड़ित किसी रोगी को बनाए रखने, प्रत्यावर्तन करने या मुख्य अंगों के कार्यों को बदलने के लिए आशयित उपचार का जब मरणांततः रोग से ग्रस्त रोगी को लागू किया जाए, केवल मृत्युकाल को बढ़ाने की प्रक्रिया का ही प्रयोजन सिद्ध करेगा और इसमें

शल्यक आपरेशन या औ-धि प्रदान करने आदि के रूप में जीवन रक्षक उपचार और संवातन, कृत्रिम पो-ाहार और हृदय फुस्फुसीय पुनरुज्जीवन जैसे यांत्रिक या कृत्रिम साधन सम्मिलित हैं । "सर्वोत्तम हित" और "सज्ञान विनिश्चय" का भी प्रस्तावित विधेयक में परिभाि-त किया गया है । धारा 2(ख) के अनुसार "सर्वोत्तम हित" में ऐसे किसी रोगी क सर्वोत्तम हित सम्मिलित हो जो अक्षम रोगी है या ऐसा सक्षम रोगी है किन्तु उसने कोई सज्ञान निर्णय नहीं लिया है और यह रोगी के चिकित्सीय हितों तक सीमित नहीं करता किन्तु इसमें नैतिक, सामाजिक, भावनात्मक और अन्य कल्याणकारी प्रतिफल भी सम्मिलित हैं । धारा 2(ङ) के अनुसार 'सज्ञान विनिश्चय' पद से किसी ऐसे रोगी द्वारा चिकित्सीय उपचार के शुरू करने या जारी रखने या बंद करने या हटा लेने के बारे में निर्णय अभिप्रेत है, जो सक्षम है और जिसे – (i) उसके रोग की प्रकृति, (ii) उपचार का कोई वैकल्पिक रूप जो उपलब्ध हो सकेगा, (iii) उपचार के अन्य रूपों के परिणाम और (iv) शे-ा अनुपचारित के परिणाम, के बारे में सूचित किया जाता है या किया गया है ।

5.3 इस समय, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि 'सज्ञान विनिश्चय' शब्दावली को इंग्लैंड (यू. के.) और अन्य देशों के विनिश्चित मामलों से उधार लिया गया है । मोटे तौर पर इस यह अर्थ है कि (रोगी के सचेत होने के बावजूद) विनिश्चय करने की क्षमता की कमी ने उसे 'सज्ञान विनिश्चय' करने से अपवर्जित कर दिया है, यद्यपि रोगी सचेत हो सकता है । "सज्ञान विनिश्चय" की उक्त परिभा-ा को 196वीं रिपोर्ट में आयोग द्वारा उद्धृत दृ-टांत एक या दो मामलों के प्रतिनिर्देश से बेहतर तरीके से समझा जा सकता है । **एम. बी. (मेडिकल ट्रीटमेंट)**[1] वाले मामले में बटलर स्लास, एल. जे. द्वारा दिए गए अपील न्यायालय के विनिश्चय में उस मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा गया :

> तथ्यों और प्रसूति विशे-ाज्ञ तथा मनःचिकित्सक परामर्शी के साक्ष्य से यह स्थापित हुआ कि रोगी स्वयं का सिजेरिशन नहीं कराना चाहता क्योंकि सभी बातों में भय की सुई प्रभावी रहती है और संकटकालीन समय पर वह कतई विनिश्चय करने की स्थिति में

[1] 1997 (2) एफ. एल. आर. 426.

नहीं थी । उस आधार पर, यह स्प-ट था कि वह उस समय अपने मानसिक कृत्य की क्षति से ग्रस्त था जिसने उसे निःशक्त बना दिया और वह अस्थायी रूप से अक्षम था

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

इसके अतिरिक्त, माता (गर्भवती महिला) और पिता बालक को जीवित पैदा कराना चाहता है और माता (गर्भवती महिला) केवल अपने डर के अधीन रहते हुए आपरेशन के पक्ष में थी और दीर्घ नुकसानी से ग्रस्त होने की संभावना थी यदि बालक अशक्त मृत पैदा हुआ तो यह अनिवार्य है कि बल के प्रयोग द्वारा यदि ऐसा कार्य करना आवश्यक था, चिकित्सीय हस्तक्षेप रोगी के सर्वोत्तम हित में था । इन परिस्थितियों में, न्यायाधीश द्वारा घो-णा मंजूर किया जाना उचित था ।

5.4 विनिश्चय करने की क्षमता के प्रश्न पर अपील न्यायालय ने इसी मुद्दे के 1992 के एक विनिश्चय – टी (एक वयस्क) (चिकित्सीय उपचार से इनकार) वाले मामले में लार्ड डोनाल्डसन को उद्धृत किया : अपने निजी भाग्य का विनिश्चय करने का अधिकार ऐसा करने की क्षमता की अपेक्षा रखता है । प्रत्येक प्रौढ़ से ऐसी क्षमता रखने की उपधारणा की जाती है किन्तु यह एक उपधारणा है जिसका खंडन किया जा सकता है । यह संबद्ध प्रौढ़ बुद्धिमत्ता या शिक्षा की मात्रा का प्रश्न नहीं है । तथापि, जनसंख्या का अल्प भाग मानसिक रोग या विकृत विकास के कारण आवश्यक मानसिक क्षमता से हीन होता है । (उदाहरण के लिए, एफ (मानसिक रोगी) (बंध्याकरण)[1] वाला मामला देखें । यह स्थायी या कम से कम दीर्घ अवधि दशा है । ऐसे अन्य लोग जिनके पास सामान्यतः वह क्षमता होती है, अचेतनावस्था या भ्रम या सदमा, घोर थकावट, पीड़ा या उनके उपचार में प्रयुक्त औ-धि के अन्य प्रभाव जैसे अस्थायी कारकों से कम हो जाती है ।

5.5 एक अन्य मामला जो बटलर स्लास, एस. जे. द्वारा उद्धृत राकडेल हेल्थकेयर ट्रस्ट – एक सीजेरियन आपरेशन का मामला भी है, यह नि-कर्ष निकाला गया कि रोगी ऐसी जानकारी को समझने की स्थिति में नहीं थी कि जो उसे दी गई क्योंकि वह "पीड़ा और भावनात्मक दबाव में घिरी

[1] 1990 (2) एसी. 1.

प्रसव-पीड़ा में थी ।"

5.6 बटलर स्लास, एल. जे. ने अन्य बातों के साथ-साथ सिजेरियन मामलों के संदर्भ में किसी महिला की विनिश्चित करने की क्षमता पर निम्नलिखित प्रतिपादनाएं अधिकथित की :

> "ऐसे व्यक्ति में क्षमता नहीं होती यदि किसी मानसिक कार्य की क्षति या असंतुलन से व्यक्ति विनिश्चय करने में असमर्थ हो जाता है कि क्या उपचार की सहमति दी जाए या इनकार किया जाए । विनिश्चय करने की असमर्थता तब होती है जब (क) रोगी यह समझने और जानकारी को प्रतिधारित करने में असमर्थ है जो विशे-कर प्रश्नगत उपचार कराने या न कराने के संभावित परिणामों के संबंध में विनिश्चय करने के लिए महत्वपूर्ण है ; (ख) विनिश्चय पर पहुंचने की प्रक्रिया के भाग के रूप में रोगी जानकारी का उपयोग करने और संतुलित रूप से उस पर विचार करने में असमर्थ है । (ग) (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त न्या. थार्पे के मत के अनुसार, यदि विवश अव्यवस्था या भय जिससे रोगी ग्रस्त है, उसे दी गई जानकारी में विश्वास को कुचलता है तो विनिश्चय सही विनिश्चय नहीं हो सकता ।"

5.7 यू. के. के विधि आयोग के परामर्श पत्र में "मानसिक क्षमता" के वि-नय पर विचार करते हुए ऐसा ही दृ-टिकोण अपनाया गया है और बटलर स्लास, एल. जे. द्वारा इसे निर्दि-ट किया गया है । भारत के विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट में दीगई 'सज्ञान विनिश्चय' की परिभा-ा लगभग उसी तरह है जैसा बटलर स्लास एल. जे. ने कहा और 1995 में यू.के. के विधि आयोग ने सुझाया था ।

5.8 भारत के विधि आयोग ने स्प-ट किया कि जहां कोई सक्षम रोगी अपने चिकित्सीय अनुक्रम को अनुज्ञात करने के लिए 'सज्ञान विनिश्चय' करता है वहां रोगी कामन ला के अधीन न तो आत्महत्या करने के प्रयास (भा. दं. सं. की धारा 309 के अधीन) का दो-ी है और न ही चिकित्सक जो उपचार छोड़ने का लोप करता है, आत्महत्या का दु-प्रेरण करने (भा. दं. स. की धारा 306) के अधीन- या आपराधिक मानववध (भा. दं. सं. की धारा 304 के साथ पठित धारा 299 के अधीन) का दो-ी है ।

5.9 जहां तक यथा उपरोक्त परिभाषित (i) अक्षम रोगी और ऐसे सक्षम रोगी जिसने 'सज्ञान विनिश्चय' नहीं किया है, वहां चिकित्सक 'चिकित्सक चिकित्सा उपचार' रोके रखने या हटाने का विनिश्चय कर सकता है यदि वह रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में है और तीन चिकित्सा विशेषज्ञों के निकाय की राय पर आधारित है । विधि आयोग द्वारा कथित 'सर्वोत्तम हित' परीक्षण उच्चतम न्यायालय द्वारा **जैकोब मैथ्यू**[1] वाले मामले में दोहराए गए **बोलम**[2] वाले मामले में अधिकथित परीक्षण पर आधारित है । विशेषज्ञों के निकाय के गठन की प्रक्रिया को विस्तार से उपवर्णित किया गया है । संघ राज्य क्षेत्रों के संबंध में स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक और राज्यों के चिकित्सा सेवा निदेशक पैनल तैयार करेंगे और इसे अधिसूचित करेंगे । प्रस्तावित विधेयक की धारा 8 में रोगी की परिचर्या कर रहे चिकित्सक द्वारा रजिस्टर बनाने की अपेक्षा अधिकथित की गई है । रजिस्टर में रोगी से संबंधित सभी सुसंगत विस्तृत ब्यौरे और रोगी को दिए जा रहे उपचार का उल्लेख होगा और चिकित्सक की राय भी होगी कि रोगी सक्षम है या अक्षम, विशेषज्ञों की राय और अक्षम रोगियों के सर्वोत्तम हित में क्या है, का भी विवरण होगा । चिकित्सा व्यवसायी तब रोगी (यदि वह सचेत है) और माता-पिता या अन्य सगे नातेदार या ऐसे करीबी मित्र को सूचित करेगा जो मूल अर्जी फाइल कर उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है जिसकी सुनवाई उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा की जाएगी (उक्त विधेयक धारा 12 द्वारा) । मूल अर्जी की सुनवाई और निपटान से संबंधित कुछ प्रक्रियागत पहलू अधिकथित किए गए हैं । यदि 15 दिनों के भीतर उच्च न्यायालय से कोई आदेश प्राप्त नहीं होता है और उस विनिश्चय के अनुसरण में जो उसने रोगी के सर्वोत्तम हित में पहले लिया है तो आगे उपचार रोकने या हटाने के लिए चिकित्सा व्यवसायी स्वतंत्र है । तथापि, वह रोगी के उपशामक देखभाल को जारी रख सकता है । भारतीय चिकित्सा परिषद मरणांततः रोग से ग्रस्त सक्षम या अक्षम रोगियों के चिकित्सा उपचार को रोकने या हटाने के मामले में चिकित्सा व्यवसायियों के मार्गदर्शन के लिए समय-समय पर मार्गदर्शक सिद्धांत जारी करने के लिए व्यादिष्ट है । (धारा 14 द्वारा) । विधि आयोग "अध्याय 7", "क्या हमारे देश में प्रगतिशील निदेश जीवित बिल को विधिक मान्यता दी जाए शीर्षक के अधीन कथित कारणों से प्रगतिशील चिकित्सा निदेश को मान्यता प्रदान करने के पक्ष में नहीं था चाहे वह लेखबद्ध ही हो । आयोग ने यह

---

[1] (1957) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 582.

[2] (2006) 5 एस. सी. सी. 472.

मत व्यक्त किया कि लोक नीति के रूप में, ऐसे निदेश को कामन ला अधिकार को अभिभावी बनाते हुए विधितः अप्रभावी बनाया जाए । तदनुसार, विधेयक में धारा 4 सम्मिलित किया गया ।

6. अरुणा (2011) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय

6.1 **अरुणा रामचन्द्र शानबाग** [(2011) 4 एस. सी. सी. 454] वाला मामला भारत का पहला मामला है जिसमें विस्तार से 'इच्छामृत्यु' पर विचार-विमर्श किया गया । उच्चतम न्यायालय ने यह स्प-ट करते हुए कि निि-क्रिय इच्छामृत्यु अन्य देशों की तरह हमारे देश में अनुज्ञेय है, ऐसे मरणांततः रुग्ण रोगी के मामले मे अपनाए जाने वाले सुरक्षोपायों और मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित करने का कार्य आरंभ किया जो अप्रतिरोध्य मूर्च्छा और विकृतचित्त जैसे शारीरिक या मानसिक दशा के कारण सहमति द्योतित करने की स्थिति में नहीं है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि कोई सगा नातेदार या 'सरोगेट' कृत्रिम प्राणरक्षक उपायों को समाप्त करने या हटाने का विनिश्चय नहीं ले सकता और ऐसे अनुक्रम को अपनाने के लिए उच्च न्यायालय को अनुमोदन लिया जाना चाहिए । तत्पश्चात्, उच्च न्यायालय को तीन चिकित्सा विशे-ाज्ञों की राय अभिप्राप्त करनी होगी । उस मामले में, अरुणा शानबान तीन दशक् से अधिक समय से लगातार निि-क्रिय दशा (संक्षेप में पी. वी. एस.) में थी और न्यायालय ने यह पाया कि पी. वी. एस. से बाहर आने की बिल्कुल संभावना नहीं थी । तथापि, न्यायालय ने इंगित किया कि वह मृत नहीं थी । उसके कुटुम्ब वालों ने उसे छोड़ दिया था और उसकी देखभाल के ई एम अस्पताल के कर्मचारियों द्वारा की जा रही थी जिसमें वह पहले स्टाफ नर्स के रूप में कार्य कर रही थी । न्यायालय ने सक्रिय और निि-क्रिय इच्छामृत्यु के बीच अन्तर बताते हुए चर्चा आरंभ किया और यह मत व्यक्त किया कि संपूर्ण विश्व में यह सामान्य विधिक स्थिति प्रतीत होती है कि जहां सक्रिय इच्छामृत्यु तब तक अवैध है जब तक इसकी अनुज्ञा देने वाला विधान न हो । वहीं निि-क्रिय इच्छामृत्यु विधान के बिना भी वैध है बशर्ते कतिपय शर्तें और सुरक्षोपायों को अपनाया जाए ।" यह इंगित किया गया कि पी. वी. एस. का विशि-ट लक्षण यह है कि दिमाग की नसें सक्रिय और कार्य करती रहती हैं जबकि वल्कल अपना कार्य और क्रिया करना बंद कर देता है । उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि कब किसी व्यक्ति को मृत कहा जाए । यह कहते हुए इसका उत्तर दिया गया कि "व्यक्ति की

तब मृत्यु हो जाती है जब उसका मस्ति-क मृत हो जाता है ।" मस्ति-क मृत्यु पी. वी. एस. से भिन्न है । तब यह नि-कर्-ा निकाला गया : "अतः, प्राण के अप्रतिरोध्य अंत के रूप में मृत्यु की वर्तमान सोच का अभिप्राय इस प्रकार पूर्णतः मस्ति-क की असफलता है कि किसी भी तरह न तो श्वास प्रक्रिया और न ही रक्त संचार संभव न हो ।"

6.2 एयरडेल वाले मामले में व्यक्त राय को विस्तार से निर्दि-ट करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यू. के. में विधि उचित रूप से सुस्थिर हो गया है कि अक्षम रोगी की दशा में यदि चिकित्सक सज्ञान चिकित्सा राय के आधार पर कार्य करते हैं और कृत्रिम प्राण रक्षा प्रणाली को हटाते हैं तो उक्त कार्य को अपराध नहीं माना जा सकता है । तब यह प्रश्न उठा कि कौन यह विनिश्चित करे कि रोगी का सर्वोत्तम हित क्या है जब वह लगातार नि-क्रिय दशा में है । तब अभिनिर्धारित करते हुए यह उत्तर दिया गया कि यद्यपि माता-पिता, पति/पत्नी या अन्य सगे नातेदारों की इच्छाओं और परिचर्या कर रहे चिकित्सकों की राय पर सम्यक् महत्व दिया जाना चाहिए किन्तु यह निश्चायक नहीं है और अंततः न्यायालय को रा-ट्रपिता के रूप में विनिश्चित करना चाहिए कि रोगी का सर्वोत्तम हित किस बात में है । एयरडेल वाले मामले में लार्ड कीथ ने जो कहा उसका अनुसरण करते हुए उच्च न्यायालय को यह दायित्व सौंपा गया है । उच्चतम न्यायालय ने जे (एक अवयस्क) (वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेंट)[1] वाले मामले के अपील न्यायालय के विनिश्चय की उक्ति को निर्दि-ट किया कि न्यायालय रा-ट्रपिता के रूप में संप्रभु के प्रतिनिधि के रूप में वही मानक अपनाएगा जो एक प्रज्ञावान और उत्तरदायी माता-पिता करता । ऐसा ही मानक 'सरोगेट' के लिए है । अरुणा वाले मामले के विनिश्चय के अनुसार उच्च न्यायालय के सिवाय 'सरोगेट' के लिए कोई विनिश्चय करने वाली भूमिका नहीं है ।

6.3 यू. एस. विनिश्चयों और विशे-ाकर न्यायमूर्ति कार्डोजो के मतों को निर्दि-ट करते हुए उच्चतम न्यायालय ने इंगित किया कि सज्ञान सहमति सिद्धांत अमेरिकन अपकृत्य विधि (एस.सी.सी. के पैरा 93 द्वारा) में दृढ़तः रच-बस गया है । सज्ञान सहमति के सिद्धांत का तार्किक परिणाम यह है कि रोगी के पास साधारणतः सहमति न देने अर्थात् उपचार से इनकार

[1] (1990) 3 आल. इ. रि. 930.

करने का अधिकार होता है । न्यायालय ने मु. न्या. रेहनक्विस्ट के मत का अवलंब लिया कि "शारीरिक अखंडता की धारणा इस अपेक्षा में समावि-ट है कि साधारणतः चिकित्सा उपचार के लिए सज्ञान सहमति की अपेक्षा होती है ।" उच्चतम न्यायालय ने क्रूजन[1] वाले मामले को विस्तार से निर्दि-ट किया जिसमें यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के मत को पु-ट किया कि नैन्सी क्रूजन जो पी. वी. एस. अवस्था में थी के कृत्रिम पो-ण और जलयोजन उपकरण को हटाने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए । यह मत व्यक्त किया कि न्या. ब्रेनन द्वारा सशक्त विसम्मत राय व्यक्त की गई थी जिसका समर्थन दो न्यायाधीशों ने किया था । उच्चतम न्यायालय ने तब इस तथ्य को उजागर किया कि क्रूजन वाले मामले में एयरडेल (जहां कोई कानून नहीं था) वाले मामले के असमान मिसौरी राज्य में एक कानून था जिसमें स्प-ट और विश्वासोत्पादक साक्ष्य की अपेक्षा थी कि जब रोगी सक्षम हो तो यह इ-ट था कि यदि वह अक्षम हो जाती है और पी वी एस में चली जाती है तो उसके जीवन रक्षक प्रणाली को हटा दिया जाना चाहिए । उस मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था । इस पृ-ठभूमि में क्रूजन वाले मामले में न्यायालय की अनुज्ञा से इनकार किया गया था ।

6.4 वि-ाय पर भारतीय विधि के संदर्भ में, यह इंगित किया गया कि **ज्ञान कौर**[2] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने इस बिन्दु पर एयरडेल वाले मामले में हाउस आफ लार्डस द्वारा व्यक्त मत का अनुमोदन करते हुए निर्दि-ट किया कि इच्छामृत्यु को विधान द्वारा ही विधिसम्मत बनाया जा सकता है । तब यह मत व्यक्त किया गया "यह उल्लेख किया जाता है कि ज्ञान कौर वाले मामले में यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने एयरडेल वाले मामले में हाउस आफ लार्डस के मत को अनुमोदित करते हुए उद्धृत किया है किन्तु यह स्प-ट नहीं किया गया है कि यह कौन विनिश्चित करेगा कि क्या अक्षम व्यक्ति अर्थात मूर्च्छा या पी वी एस व्यक्ति की दशा में प्राण रक्षक प्रणाली को हटा लिया जाए । यह उलझाउ, प्रश्न प्रायः भारत मे उठता है क्योंकि ऐसे मामलों की संख्या अधिक है जहां व्यक्ति (घटना या किसी अन्य कारण से) मूर्च्छा में चले जाते हैं या किसी अन्य कारण से सहमति देने में असमर्थ हैं । तब प्रश्न उठता है कि प्राण रक्षक प्रणाली को

---

[1] 497 यू. एस. 261.

[2] (1996) 2 एस. सी. सी. 648.

हटाने के लिए सहमति कौन प्रदान करे ।" तब यह मत व्यक्त किया गया : "हमारी राय में यदि हम रोगी के नातेदारों या चिकित्सक या करीबी मित्र पर यह विनिश्चय की जिम्मेदारी डाल दें कि क्या अक्षम व्यक्ति के प्राण रक्षक को हटाया जाए या नहीं तो हमारे देश में हमेशा यह जोखिम है कि ऐसे कुछ बेईमान व्यक्तियों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा सकता है जो रोगी की संपत्ति को विरासत या अन्यथा द्वारा हथियाना चाहते हैं ।"

6.5 इस प्रश्न पर आगे चर्चा करते हुए कि प्राण रक्षक प्रणाली (जो उसे खिलाकर की जा रही है) को हटाया जाए और किसके अनुरोध पर, उच्चतम न्यायालय ने पैरा 124 के आमुख मतों के साथ इस प्रकार विधि अधिकथित किया : पी वी एस या जो अन्यथा असक्षम है के संबंध में प्राण रक्षक प्रणाली को हटाने का विनिश्चय लेने के लिए विधिक प्रक्रिया के बारे में हमारे देशों में कोई कानूनी उपबंध नहीं है । हम श्री अन्ध्यारुजना से सहमत है कि कतिपय स्थितियों में हमारे देश में निष्क्रिय इच्छामृत्यु को अनुज्ञा दी जाए और हम विद्वान् महान्यायवादी से असहमत हैं कि इसकी कभी-भी अनुज्ञा न दी जाए । अतः, विशाखा[1] वाले मामले में प्रयुक्त तकनीक का अनुसरण करते हुए हम इस संबंध में विधि अधिकथित कर रहे है जो तब तक विधि बनी रहेगी जब तक संसद वि-नय पर विधि नहीं बनाती ।[2]

(i) माता-पिता या पति/पत्नी या अन्य सगे नातेदार या इनमें से किसी के अभाव में प्राण रक्षक प्रणाली को समाप्त करने का विनिश्चय, विनिश्चय करीबी मित्र के रूप में कार्य करे रहे व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय द्वारा भी लिया जा सकता है । यह रोगी की परिचर्या कर रहे चिकित्सकों द्वारा भी लिया जा सकता है । तथापि, विनिश्चय रोगी के सर्वोत्तम हित में सद्भाविक रूप से लिया जाना चाहिए ।

इस मामले में, हमने पहले ही उल्लेख किया है कि अरुणा शानबाग के माता-पिता मृत हैं और अन्य सगे नातेदार उस पर दुर्भाग्यपूर्ण हमले से ही उसमें रुचि नहीं रखते । जैसे कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, के ई एम अस्पताल के कर्मचारी

---

[1] काज शी-र्ी और उद्धरण दिया जाए ।

[2] हमारे द्वारा रेखांकन किया गया ।

ही इतने लम्बे व-र्षों से दिन-रात उसकी देखभाल कर रहे हैं जो वास्वतिक रूप से उसके करीबी मित्र हैं न कि सुश्री पिंकी विरानी जो मुश्किल से कभी उससे मिलने आई और उस पर एक पुस्तक लिखा । अतः, के ई एम अस्पताल के कर्मचारी ही वह विनिश्चय ले सकते हैं । के ई एम अस्पताल के कर्मचारियों ने स्प-टतः अपनी इच्छा व्यक्त की है कि अरुणा शानबाग को जीने की अनुज्ञा दी जाए ।

तथापि, यदि यह मान लिया जाए कि के ई एम अस्पताल के कर्मचारी कभी भवि-य में अपना विचार परिवर्तित करें तो हमारी राय में, ऐसी स्थिति में, के ई एम अस्पताल को प्राण रक्षक प्रणाली हटाने के विनिश्चय के अनुमोदन के लिए बम्बई उच्च न्यायालय में आवेदन करना होगा ।

(ii) अतः, यदि नजदीकी नातेदार, चिकित्सक या करीबी मित्र द्वारा प्राण रक्षक को हटाने का विनिश्चय लिया जाता है तो ऐसे विनिश्चय को एयरडेल मामले के अधिकनानुसार संबद्ध उच्च न्यायालय से अनुमोदन की अपेक्षा है ।

हमारी राय में, हमारे देश में यह और भी अधिक आवश्यक है क्योंकि हम रोगी की संपत्ति को विरासत में प्राप्त करने के लिए नातेदारों या अन्य द्वारा किए जाने वाली रिश्टि की संभावना से इनकार नहीं कर सकते ।

हमारी राय में, यदि हम एकमात्र रोगी के नातेदारों या चिकित्सकों या करीबी मित्र पर यह विनिश्चित करने का दायित्व छोड़ देते हैं कि अक्षम व्यक्ति से प्राण रक्षक प्रणाली को हटा लिया जाए तो हमारे देश में हमेशा यह जोखिम है कि ऐसे कुछ बेईमान व्यक्ति द्वारा इसका दुरुपयोग हो सकता है जो रोगी की संपत्ति को विरासत में या अन्यथा हथियाना चाहते हैं ।
हम इस संभावना से इनकार नहीं कर सकते कि बेईमान व्यक्ति कुछ बेईमान चिकित्सकों की सहायता से यह साबित करने के लिए सामग्री की कूटरचना कर सकते हैं कि सुधार की कोई गुंजाइश न होकर यह प्राणांतक मामला है । हमारी राय में,

अक्षम रोगी के मामले में माता-पिता, पति/पत्नी या अन्य सगे नातेदार या करीबी मित्र की इच्छाओं को अधिक महत्व देते समय और परिचर्या कर रहे चिकित्सकों की राय को भी सम्यक् महत्व देते हुए हम पूरी तरह से उनके विवेकाधिकार पर नहीं छोड़ सकते कि क्या प्राण रक्षक प्रणाली को हटा लिया जाए या नहीं । हम एयरडेल वाले मामले में लार्डकीथ के विनिश्चय से सहमत हैं कि इस संबंध में उच्च न्यायालय का अनुमोदन लिया जाना चाहिए । यह रोगी के संरक्षण, चिकित्सकों, नातेदारों और करीबी मित्र के संरक्षण के हित और रोगी के कुटुम्ब और आम जनता के पुनः आश्वासन के लिए है । यह रा-ट्रूपिता के सिद्धांत के भी अनुरूप है जो विधि का सुज्ञात सिद्धांत है" (एस. सी. सी. का पृ-ठ 520 देखें)

6.6 उच्चतम न्यायालय ने 'रा-ट्रूपिता' के सिद्धांत को स्प-ट किया :

उच्चतम न्यायालय ने तब यह मत व्यक्त किया कि संविधान का अनुच्छेद 226 किसी अक्षम रोगी के प्राण रक्षक प्रणाली को हटाने की अनुज्ञा चाहने वाले नजदीकी नातेदार या करीबी मित्र या चिकित्सक/अस्पताल कर्मचारी द्वारा फाइल किए गए आवेदन पर उच्च न्यायालय को उपयुक्त आदेश पारित करने की पर्याप्त शक्तियां देता है ।

6.7 उच्च न्यायालय द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया पैरा 134 (पृ-ठ 522) में इस प्रकार अधिकथित की गई है : जब ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है तो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को तत्काल कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ गठित करनी चाहिए जो यह विनिश्चित करेगी कि अनुमोदन दिया जाए या नहीं । ऐसा करने के पूर्व न्यायपीठ ऐसे चिकित्सा प्राधिकारियों/चिकित्सा व्यवसायियों से जैसा वह ठीक समझे, परामर्श करने के पश्चात् न्यायपीठ द्वारा नामित किए जाने वाले तीन प्रख्यात चिकित्सकों की समिति की राय मांगेगा । तीन चिकित्सकों में से एक चिकित्सक अधिमानतः स्नायु विज्ञानी, एक मनोविज्ञानी और तीसरा फिजीशियन होना चाहिए । इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र के परामर्श से प्रत्येक शहर में चिकित्सकों का एक पैनल तैयार किया जा सकता है और इस प्रयोजन के लिए उनकी फीस नियत की जाएगी । न्यायपीठ द्वारा नामित तीन चिकित्सकों की समिति को

रोगी की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए और रोगी के अभिलेख को देखना चाहिए और अस्पताल कर्मचारियों के विचार भी लेने चाहिए तथा उच्च न्यायालय की न्यायपीठ को अपनी रिपोर्ट पेश करनी चाहिए । साथ ही साथ चिकित्सकों की समिति नियुक्त कर उच्च न्यायालय की न्यायपीठ राज्य और रोगी के सगे नातेदारों अर्थात् माता-पिता, पति/पत्नी, भाई/बहन आदि और उसके अभाव में उसके करीबी मित्र को नोटिस भी जारी करेगी और चिकित्सक की समिति की रिपोर्ट की प्रति यथाशीघ्र उपलब्ध होने पर उसे देगी । उन्हें सुनने के पश्चात्, उच्च न्यायालय की न्यायपीठ को अपना अधिमत देना चाहिए ।

उपरोक्त प्रक्रिया का अनुसरण तब तक संपूर्ण भारत में किया जाए जब तक संसद इस वि-नय पर विधान नही बनाता ।"

7. चिकित्सा आचार और चिकित्सक का कर्तव्य

7.1 चिकित्सक का क्या कर्तव्य है ? क्या वह शल्य क्रिया या कृत्रिम संवातन आदि सहित उपचार आरंभ करने या जारी रखने के लिए रोगी की सहमति लेने के लिए आबद्ध है ? उसमें उस समय कैसे कार्य करने की प्रत्याशा की जाती है जहां रोगी अपनी इच्छा व्यक्त करने या सज्ञान विनिश्चय करने की स्थिति में नहीं है ? ये प्रमुख प्रश्न हैं जो विचार-विमर्श के लिए उद्भूत हुए हैं और इन मुद्दों पर एयरडेल और अरुणा वाले मामलों में चर्चा की गई थी ।

7.2 इस संदर्भ में, चिकित्सा आचार के दो मूल सिद्धांतों को रोगी की स्वायत्तता और उपकार के लिए उपयोगी कहा गया है (अरुणा वाले मामले में एस.सी.सी. के पृ-ठ 482 द्वारा)

1. 'स्वायत्तता से आत्मनिर्णय का अधिकार अभिप्रेत है, जहां सज्ञान रोगी को अपने उपचार की रीति का चयन करने का अधिकार है । स्वायत्त होने के लिए, रोगी को विनिश्चय करने और विकल्प चुनने के लिए सक्षम होना चाहिए । उसके विकल्प चुनने में अक्षम होने की दशा में, जीवित विल के रूप में पहले से ही व्यक्त उसकी इच्छाएं या उसकी ओर से कार्य कर रहे प्रतिनिधियों के

इच्छा (प्रतिस्थापित निर्णय) का सम्मान किया जाए ।

"प्रतिनिधि से वह निरुपित करने जो रोगी विनिश्चित करता यदि वह सक्षम होता या रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य करने की प्रत्याशा है ।

2. उपकार ऐसा कार्य है जो रोगी के सर्वोत्तम हित में है (या न्यायनिर्णीत किया जाए) । रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य करने से ऐसा कार्य करना अभिप्रेत है जो रोगी के लिए सर्वोत्तम हो और व्यक्तिगत धारणा हेतु या अन्य प्रतिफलों द्वारा प्रभावित न हो.....।"

7.3 उच्चतम न्यायालय और विधि आयोग दोनों ने इन पहलुओं पर हाउस आफ लार्डस की राय का अवलंब लिया । संविवाद की रूपरेखा को एयरडेल वाले मामले में लार्ड गाफ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में रूपायित किया गया है –"फिर भी, जहां (उदाहरणार्थ) किसी रोगी को ऐसी दशा में अस्पताल में लाया जाता है कि प्राण रक्षक प्रणाली के फायदे के बिना वह जीवित नहीं रह पाएगा तो यह विनिश्चय करना होना कि क्या यदि उपलब्ध हो तो वह फायदा उसे दिया जाए या नहीं । वह विनिश्चय रोगी के सर्वोत्तम हित में ही किया जा सकता है । निस्संदेह, साधारणतया उसके सर्वोत्तम हित की यह अपेक्षा होगी कि यथाशीघ्र आवश्यकतः उसे प्राण रक्षक प्रणाली पर रखा जाए उसके पश्चात् भवि-य की उसकी दशा और पूर्वानुमान का सही निर्धारण किया जाए । किन्तु यदि इसको हटाने से पर्याप्त रूप से न तो उसकी अवस्था में सुधार होता है न ही वह मरता है तो अंततः प्रश्न यह उठता है कि क्या उसे अनिश्चित काल तक उस पर रखा जाए । जैसा मैंने देखा, इस प्रश्न का उत्तर (प्रणाली की सतत उपलब्धता मानते हुए) स्थापित चिकित्सा पद्धति को ध्यान में रखते हुए, स्वयं रोगी के सर्वोत्तम हितों के प्रतिनिर्देश से ही दिया जा सकता है .....। जैसा मैं समझता हूँ, ऐसा प्रश्न जो वर्तमान मामले के केन्द्र में है, यह है कि क्या उस सिद्धांत पर एंथेनी ब्लैन्ड के उपचार और देखभाल का उत्तरदायी चिकित्सक उस कृत्रिम पो-ण की प्रक्रिया को तर्कसंगततः समाप्त कर सकता है जिस पर उसके प्राण का दीर्घीकरण निर्भर है ।" उस प्रश्न पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया गया :"इस प्रश्न को समझने के लिए यह निर्णायक है कि स्वयं प्रश्न को ठीक तरह से विरचित किया

जाए । प्रश्न यह नहीं है कि क्या चिकित्सक ऐसा अनुक्रम अपनाए जो उसके रोगी को मारता हो ऐसा अनुक्रम अपनाए जो उसकी मृत्यु को तीव्रता करने का प्रभाव रखता हो । प्रश्न यह है कि क्या चिकित्सक चिकित्सा उपचार या देखभाल अपने रोगी को मुहैया कराना जारी रखे या नहीं जो यदि जारी रखा जाता है तो उसके रोगी के जीवन को दीर्घ बनाएगा । कभी-कभी प्रश्न प्रभावशाली या भावनात्मक शब्दों में पूछा जाता है जो भ्रामक हो सकता है ।" ऐसा भ्रम दूर करने के लिए, पूछे जाने वाले और उत्तर दिए जाने वाले सही प्रश्न को इस प्रकार कहा जा सकता है :– "प्रश्न यह नहीं है कि क्या यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है कि उसकी मृत्यु हो जाए । प्रश्न यह है कि क्या यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है कि उसका जीवन इस तरह के चिकित्सा उपचार या देखभाल के जारी रहने से और बढ़ जाएगा ।" तब यह मत व्यक्त किया गया : "वर्तमान जैसे मामले में प्रश्न की सही विरचना का विशि-ट महत्व है, जहां रोगी बिल्कुल अचेत है और जहां उसकी दशा में किसी प्रकार का सुधार होने की कोई आशा नहीं है । इन जैसी परिस्थितियों में, यह कहना कठिन हो सकता है कि यह उसके सर्वोत्तम हित में है कि उपचार को समाप्त किया जाए । किन्तु यदि प्रश्न पूछा जाता है तो मेरी राय यह इस प्रकार होना चाहिए कि क्या यह उसके सर्वोत्तम हित में है कि ऐसे उपचार को जारी रखा जाए जो उसके जीवन को कृत्रिम रूप से दीर्घ बनाने का प्रभाव रखता है, उस प्रश्न का इस आशय का उत्तर समझदारी से दिया जा सकता है कि ऐसा करना उसके सर्वोत्तम हित में नहीं है ।"

मरणांततः रुग्ण अक्षम रोगी के प्रति चिकित्सक के कर्तव्य और बाध्यता पर लार्ड गॉफ के निम्नलिखित शब्द बिल्कुल प्रासंगिक हैं :

> "मेरी राय में, ऐसा चिकित्सक जो रोगी की देखभाल कर रहा है, रोगी के जीवन की गुणता पर ध्यान दिए बिना उसके पास उपलब्ध किन्हीं साधनों द्वारा उसके जीवन को बढ़ाने के पूर्ण बाध्यता के अधीन नहीं हो सकता है । सामान्य मानवता की भिन्न अपेक्षा है जैसी अपेक्षा इस देश और विदेशों में चिकित्सा आचार और स्वीकृत सद् चिकित्सा पद्धति का है । जैसाकि मेरा यह चिन्तन है कि चिकित्सक का विनिश्चय कि ऐसा कोई कदम उठाया जाए या नहीं (अपनी सहमति देने या विधारित करने की रोगी की योग्यता के अध्यधीन रहते हुए) रोगी के सर्वोत्तम हित में होना चाहिए । मेरी

राय में, यह ऐसा सिद्धांत है जो इस स्थापित नियम का आधार है कि चिकित्सक जो ऐसे रोगी का देखभाल कर रहा है जो उदाहरणार्थ कैन्सर से मर रहा है, इस तथ्य के बावजूद कि वह जानता है कि उस उपयोग का अनु-ांगी प्रभाव रोगी के जीवन को कम कर देगा, विधितः दर्द निवारक औ-धि दे सकेगा ।"

7.4 तब लार्ड गाफ ने उपयुक्त मत व्यक्त किया (पी वी एस और इसी प्रकार) के मामले में कृत्रिम पो-ण की समाप्ति किसी पर्वतारोही का रस्सा काटने या गहरे समद्री गोताखोर से वायु पाइप अलग करने के समतुल्य नहीं है । उसी मामले में, लार्ड ब्राउन विल्किन्सन ने कहा कि चिकित्सक रोगी के प्रति उसका जीवन बनाए रखने के किसी कर्तव्य के लिए ऋणी नहीं हो सकता जहां वह जीवन ऐसे अंतर्वेधी चिकित्सा देखभाल द्वारा ही कायम रखा जा सकता है जिसके लिए रोगी ने सहमति नहीं दी है । आगे इस प्रकार विधिक स्थिति स्प-ट किया : "यदि ऐसी अवस्था आती है जहां उत्तरदायी चिकित्सक इस युक्तियुक्त नि-कर्-ा पर पहुंचता है (जो चिकित्सा सम्मति के उत्तरदायी निकाय के मतों के अनुकूल है) कि अंतर्वेधी प्राण रक्षक प्रणाली को आगे बनाए रखना रोगी के "सर्वोत्तम हित" में नहीं है तो वह उस प्राण रक्षक प्रणाली को विधितः अब जारी नहीं रख सकता : ऐसा करना व्यक्ति के प्रति प्रहार का अपराध और अतिक्रमण का अपकृत्य गठित करेगा । अतः, वह रोगी का जीवन बनाए रखने के किसी कर्तव्य का भंग नहीं करता । अतः, वह लोप द्वारा हत्या का दो-ी नहीं है ।

7.5 इन पैराग्राफों को अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा अनुमोदित करते हुए उद्धृत किया गया है ।

7.6 एयरडेल वाले मामले में लार्ड मस्टिल की मताभिव्यक्तियां, जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया, भी सुसंगत है – हाउस के नाम तकनीकी तर्को के माध्यम से आगे बढ़ने से काफी व्यापक स्थिति पैदा हो गई कि यह आम समुदाय के सर्वोत्तम हित में है कि एंथोनी ब्लैन्ड के जीवन का अब अंत हो जाए । चिकित्सकों ने ऐसे सभी कार्य किए जो वे कर सकते थे । आगे बढ़ाने से कोई फायदा नहीं होगा और अधिक खोना पड़ेगा । कुटुम्ब की दुर्दशा धीरे-धीरे बदतर हो जाएगी । ऐसा रोगी जिसकी दशा में कभी सुधार नहीं होगा, जो कई व-ों तक जीवित रहेगा और जो

यह पहचानता भी नहीं है कि कौन उसकी देखभाल कर रहा है, की देखभाल करने के जिम्मेदार चिकित्सा कर्मचारी की श्रद्वा पर तनाव बढ़ता जाएगा । कई लोगों की राय के अनुसार कि एंथोनी ब्लैन्ड के प्रति समर्पित कुशलता, श्रम और धन के व्यापक संसाधनों का उपयोग अन्य ऐसे रोगियों की दशा को सुधारने में अधिक लाभदायक रूप से किया जा सकता था जिनका यदि उपचार किया जाता तो आने वाले कई व-र्ा तक अनेक सार्थक स्वास्थ्यप्रद और सुखद जीवन प्राप्त होते ।"

7.7 इस प्रकार पी वी एस रोगी के मरने तक उपचार को जारी रखने के लिए चिकित्सक को मजबूर करने के नकारात्मक प्रभावों को बलात् चित्रित किया गया है ।

8. 17वें विधि आयोग द्वारा विश्ले-ण

8.1 विधि आयोग ने एयरडेल वाले मामले का संक्षेपण इस प्रकार किया है :–

> "एयरडेल में हाउस आफ लार्डस के उपरोक्त निर्णय में विधि के एक महत्वपूर्ण सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया है और कहा गया है कि मृतप्रायः रोगी के जीवन रक्षक तंत्र को रोक देने या हटा देने मात्र का अर्थ है कि रोगी को प्राकृतिक मृत्यु अपनाने की अनुमति दी जाए और जहां मृत्यु सामान्य अनुक्रम में निश्चित है वहां जीवन समर्थक प्रणाली को रोक देना या हटा देना अपराध नहीं है ।
>
> कोई ऐसा रोगी जो सज्ञान सहमति देने में समर्थ है, सहमति देने से इनकार करता है या उसने पहले ही सहमति देने से इनकार कर दिया है तो डाक्टर उसके जीवन को बनाए रखने के लिए जीवन समर्थक प्रणाली को चालू नहीं रखा सकता भले ही डाक्टर यह समझता हो कि ऐसी प्रणाली को चालू रखना रोगी के हित में है । रोगी का स्व-अवधारण का अधिकार आत्यंतिक है । किन्तु रोगी के जीवन को बचाने का डाक्टर का कर्तव्य आत्यंतिक नहीं है । यदि यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है तो डाक्टर कृत्रिम उपायों से रोगी के जीवन को खींचते रहने से स्वयं को रोक सकता है । ऐसा लोप अपराध नहीं है । डाक्टर या अस्पताल

न्यायालय से इस आशय की घो-णा की मांग कर सकते हैं कि जीवन समर्थक प्रणाली को हटा देना, जैसा कि प्रस्तावित है, विधिपूर्ण होगा ।"

8.2 विधि आयोग ने नि-क्रिय इच्छामृत्यु से संबंधित दो महत्वपूर्ण पहलुओं को स्प-ट किया । पहला, ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य[1] वाले मामले की मताभिव्यक्तियां जो एक संविधान न्यायपीठ विनिश्चय है । उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 306 और 309 दोनों की संवैधानिक विधिमान्यता को कायम रखा जिसके अधीन आत्महत्या के दु-प्रेरण और आत्महत्या के प्रयास को दंडनीय बनाया गया है । धारा 306 के संदर्भ में, उच्चतम न्यायालय ने जीवन रक्षक प्रणाली को हटाने के वि-नय को छुआ । एयरडेल वाले मामले को भी उस निर्णय में उद्धृत किया गया । उच्चतम न्यायालय ने इस प्रतिपादना को दोहराया कि इच्छामृत्यु को उपयुक्त विधि अधिनियमित करके ही वैध बनाया जा सकता है । तथापि, इच्छामृत्यु जिसे विधान द्वारा वैध बनाया जा सकता है और प्राण रक्षक प्रणाली को हटाना जो कतिपय परिस्थितियों में अनुज्ञेय है, के बीच एयरडेल मामले में इंगित अन्तर को ज्ञान कौर वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्यता प्रदान किया गया । संविधान के अनुच्छेद 21 पर विचार करते हुए इसी मामले में व्यक्त की गई एक अन्य महत्वपूर्ण मताभिव्यक्ति इस प्रकार है :–"ये जीवन समाप्त करने के मामले नहीं हैं बल्कि प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया जो पहले से ही आरंभ हो गई है, के समापन को तीव्रता करने वाली है । ऐसे मामलों में भी चिकित्सक सहायता प्राप्त जीवन को समाप्त करने की बहस अनिर्णायक है ।" इस तरह विधि आयोग ने ज्ञान कौर वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की उक्ति से समर्थन प्राप्त किया ।

8.3 विधि आयोग का दूसरा प्रस्ताव भारतीय दंड संहिता में अंतर्वि-ट "साधारण अपवाद" के दृ-टिकोण से है । इनमें से कुछ उपबंधों का अवलंब यह प्रदर्शित करने के लिए लिया गया कि मरणांततः रोग से ग्रस्त रोगी द्वारा व्यक्त इच्छा के आधार कार्य कर रहे या मूर्च्छा या पी वी एस दशा आदि के रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य कर रहे चिकित्सक को अपराध करने वाला नहीं समझा जाएगा । विभिन्न अपवादों पर चर्चा करने के

1

पश्चात् विधि आयोग ने यह नि-कर्-ा निकाला : "हमारे दृ-टिकोण से धारा 76 – 79, धारा 88 की तुलना में अधिक उचित है और भां दं. सं. की धारा 299 के साथ पठित धारा 304 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है" : धारा 76 में यह उपबंध है कि "कोई बात अपराध नहीं है जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाए, जो उसे करने के लिए विधि द्वारा आबद्ध हो या जो तथ्य के भूल के कारण, न कि विधि के भूल के कारण, सद्भावपूर्वक विश्वास करता हो कि वह उसे करने के लिए विधि द्वारा आबद्ध है ।" धारा 79 अपवाद इस प्रकार अधिनियमित करता है : कोइ बात अपराध नहीं है जो ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाए जो उसे करने के लिए विधि द्वारा न्यायानुमत हो या तथ्य के भूल के कारण, न कि विधि की भूल के कारण सद्भावपूर्वक विश्वास करता हो कि वह उसे करने के लिए विधि द्वारा न्यायानुमत हैं ।"

8.4 यह स्प-ट किया गया कि धारा 76 ऐसे सक्षम रोगी जो उपचार न लेने का विनिश्चय करता है, के अनुरोध पर चिकित्सा उपचार को रोकने या हटाने के मामले को लागू होती है । यह कहा गया कि धारा 79 सक्षम और अक्षम दोनों प्रकार के रोगियों के मामले में चिकित्सक की कार्रवाई को लागू होती है । तब यह मत व्यक्त किया गया "हमारे मतानुसार जहां चिकित्सा व्यवसायी ऐसा रोगी, जो प्रौढ़ है और जो सक्षम है, के चिकित्सा उपचार लेने की इनकारी का पालन करने के लिए कामन ला के अनुसार कर्तव्याधीन है वहां उसे उपरोक्त पैरामीटर के भीतर व्यक्ति की परिणामी मृत्यु के लिए घोर उपेक्षा की दो-ी नहीं ठहराया जा सकता ।" इसी प्रकार, यह इंगित किया गया कि अक्षम रोगी या ऐसा रोगी जो सज्ञान विनिश्चय करने की स्थिति में नहीं है, के मामले में, यदि चिकित्सक विशे-ाज्ञों की राय के आधार पर रोगी के सर्वोत्तम हित में उपचार रोकने या हटाने का विनिश्चय लेता है तो ऐसे रोके जाने या हटाए जाने को घोर उपेक्षा का कार्य नहीं कहा जा सकता । अतः, भा. दं. सं. की धारा 304-क लागू नहीं होगी ।

8.5 विधि आयोग ने जैकब मैथ्यू वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें धारा 304-क के अधीन घोर उपेक्षा के संदर्भ में यह इंगित किया गया कि यह स्थापित होना चाहिए कि किसी चिकित्सावृत्तिक ने अपनी सामान्य संवेदना और प्रज्ञा में ऐसा कार्य किया है

या कार्य करने में असफल रहा है जो अभियुक्त चिकित्सक द्वारा किया गया समझा गया था ।

8.6 वहीं, आयोग ने पर्याप्त सतर्कता के साथ प्रस्तावित विधेयक इस आशय हेतु धारा (धारा 11) सम्मिलित किए जाने का सुझाव दिया कि ऐसी स्थितियों में चिकित्सक का कार्य या लोप विधिसम्मत है । आपराधिक दायित्व के बिन्दु पर विधि आयोग ने एयरडेल (यू. के.) और क्रूजन (यू. एस.) वाले मामलों में व्यक्त विनिश्चय को भी निर्दि-ट किया कि चिकित्सा उपचार देने या जारी रखने में चिकित्सक का लोप किसी अपराध की कोटि में नहीं आता । इस संदर्भ में, हम यहां यह उल्लेख करते हैं कि एयरडेल मामले में अपनाए गए ''कार्य'' और ''लोप'' की धारणा के प्रति यह आलोचना है कि चिकित्सक द्वारा कृत्रिम प्राण वर्धीकरण उपचार हटाने से कोई दांडिक अपराध नहीं किया गया । यह इंगित किया गया कि उसमें अंतवर्लित लोप अपराध की कोटि में नहीं आता । इस दृ-टिकोण के बावजूद विधि आयोग ने 196वीं रिपोर्ट में यह नि-कर्-ा निकाला था कि कोई अधि-ठायी अपराध नहीं बनता है और किसी भी दशा में भा. दं. सं. के ''साधारण अपवाद'' चिकित्सकों को आपराधिक दायित्व से अपवर्जित करते हैं ।

8.7 अपकृत्य के सिविल दायित्व पर विचार करते हुए, विधि आयोग ने जैकब मैथ्यू और बोलम वाले मामलों को निर्दि-ट करने के पश्चात् हाल्सबरी ला आफ इंग्लैझउ (4था अंग, जिन्द 30 पैरा 35) में व्यक्त प्रतिपादना का अवलंब लिया कि विकित्सकों के बीच विद्यमान प्रतिकूल का निकाय होने पर भी यदि चिकित्सकों ने उस विशि-ट कला के दक्ष चिकित्सकों के उत्तरदायी निकाय द्वारा स्वीकृत उचित पद्धति के अनुसार कार्य किया हो तो वह उपेक्षा का दो-ी नहीं है ।

9. इच्छामृत्यु का विधिमान्यकरण – परिप्रेक्ष्य और विचार

9.1 इच्छामृत्यु को मान्यता प्रदान करने और विधिमान्यकरण करने के प्रश्न पर चर्चा संपूर्ण विश्व में हो रही है । पक्ष और विपक्ष के मत दार्शनिक, नैतिक और विधिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित है । भिन्न-भिन्न मत उभर कर

सामने प्रकट हुए जिनमें से कुछ उग्र हैं । श्री सयन दास[1] द्वारा प्रस्तुत "विधायी निक्रिय इच्छामृत्यु" पर विस्तृत शोध निबंध में, विभिन्न दृ-टिकोण पर चर्चा की गई है और वृद्धावस्था जीवन देखभाल समेत वि-नय के व्यापक साहित्य को निर्दि-ट किया गया है । हमारा यह मत है कि ऐसे जटिल वि-नय पर तार्किक और मानवीय दृ-टिकोण को प्राथमिकता दी जाना चाहिए । अत, निक्रिय इच्छामृत्यु ऐसा रोगी जो अपनी इच्छा व्यक्त करने की स्थिति में नहीं है, के सर्वोत्तम हित में कार्य कर रहे चिकित्सक के अध्यधीन रहते हुए, ऐसे भाव जिसमें सक्षम और अक्षम देनों तरह के रोगियों के मामले में इस रिपोर्ट के आरंभिक भाग में वर्णित किया गया है, अधिकांश देशों में अनुज्ञात की जा रही है । चिकित्सा आचारशास्त्र के व्यापक सिद्धांत, जिसका पालन चिकित्सक द्वारा विनिश्चय लेने में किया जाएगा, रोगी की स्वायत्तता (या स्व-अवधारण का सिद्धांत) और उपकार हैं जिसका अभिप्राय ऐसा अनुक्रम अपनाना है जो व्यक्तिगत सोच, हेतु या अन्य प्रतिफलों द्वारा अप्रभावित हुए बिना रोगी के लिए सर्वोत्तम हो ।[2] एयरडेल वाले मामले में लार्ड कीथ ने यह मत व्यक्त किया कि अस्पताल/चिकित्सा व्यवसायी को पी वी एस रोगी का उपचार समाप्त करने के लिए प्रभारी चिकित्सा व्यवसायियों द्वारा लिए गए विनिश्चय को पु-ट करने या उलटने के लिए उच्च न्यायालय के कुटुम्ब प्रभाग को आवेदन करना चाहिए । एयरडेल वाले मामले में लार्ड कीथ द्वारा इंगित मत के अनुसार, अनुभवी व्यक्तियों के निकाय का गठन होने और पद्धति विकसित होने तक ऐसा अनुक्रम अपनाया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने अरुणा वाले मामले में लार्ड कीथ द्वारा सुझाए गए अनुक्रम को अनुमोदित किया है और इस हितकारी सुरक्षोपाय को अब हमारी विधिक प्रणाली में सम्मिलित किया गया है । जहां तक सक्रिय इच्छामृत्यु का संबंध है, अभी काफी बहस चल रही है और "हमारे समाज के ऐसे कई उत्तरदायी सदस्य हैं जो यह विश्वास करते हैं कि इच्छामृत्यु को विधिसम्मत बनाया जाना चाहिए किन्तु वर्तमान लागू विधि के अनुसार, इच्छामृत्यु (निक्रिय इच्छामृत्यु से भिन्न) कामन ला में अपराध है और विधान के द्वारा इसे विधि सम्मत बनाया जा सकता है ।" जैसा एयरडेल वाले मामले में मत व्यक्त किया

---

[1] सिम्बोसिसला स्कूल, पुणे का एक एम. एल. एम. छात्र, जिसका मार्गदर्शन डा. शशिकला गुरूपुर, ला स्कूल का निदेशक और सदस्य (पी.टी.), विधि आयोग : sayandas@symlaw.ac.in

[2] अरुणा शानबाग वाला मामला एस. सी. सी. का पृ-ठ 482, पूर्वोक्त, देखिए ।

गया है और विधि आयोग (196वीं रिपोर्ट में) द्वारा दोहराया गया है । भारत में भी, विधि और चिकत्सावृत्ति तथा अध्यापन क्षेत्र के कई लोगों ने यह मत व्यक्त किया है कि इच्छामृत्यु को विधिमान्य बनाया जाए ।

9.2 वी. आर. जयदेवन ने सक्रिय इच्छामृत्यु के युग का प्रारंभ करने का अभिवचन किया है । सक्रिय इच्छामृत्यु को विधिमान्य बनाने के वि-ाय पर उनके द्वारा व्यक्त निम्नलिखित उपयुक्त मत को उद्धृत करना उपयोगी होगा[1] :

> "यू. एस. और इंगलिश दोनों न्यायालयों के विनिश्चयों के झुकाव से यह प्रकट होता है कि कामन ला प्रणालियां सक्रिय इच्छामृत्यु को अपराध के रूप में अवैध घो-ित करती है । वहीं, कई यह महसूस करते हैं कि सक्रिय इच्छामृत्यु आधुनिक समय में सुसंगतता प्राप्त करती जा रही है । सक्रिय इच्छामृत्यु को विधिसम्मत करने के आक्षेप धार्मिक सिद्धांतों, वृत्तिक और आचारशास्त्रीय पहलुओं और दुरुपयोग के भय पर आधारित हैं । किन्तु, यह भूला नहीं जा सकता है कि इसी प्रकार के आक्षेपों को उलटकर गर्भपात को वैध बनाया गया था और बाद में एकान्तता के अधिकार के तत्व के रूप में उभर कर सामने आया । यह निवेदन किया गया कि गर्भपात की तरह, आधुनिक समाज सहायताप्राप्त आत्महत्या के अधिकार की मांग कर रहा है ।

उन्होंने अपने दृ-िटकोण के समर्थन में कई नजीर उद्धृत किए ।

9.3 अरुणा शानबाग और ज्ञान कौर के नवीनतम मामलों में भी उच्चतम न्यायालय ने कतिपय निर्बंधनों और सुरक्षोपायों का पालन करने के अध्यधीन रहते हुए नि-क्रिय इच्छामृत्यु की पु-िट की और मान्यता प्रदान किया है जो इसकी वैधता और औचित्य का पर्याप्त संकेत है । एयरडेल वाले मामले के अधिमत ने न केवल यू. के. में बल्कि अन्य देशों में भी इस संविवाद से छुटकारा दिया है जहां निर्णय के तर्काधार का अनुसरण किया गया है ।

---

[1] वी. आर. जयदेवलन "जीवन का अधिकार (कौन) किन्तु कतई जीवन नहीं है " आत्महत्या से सक्रिय इच्छामृत्यु की सीमालंघना" (2011) 53 जे आई एल आई 437 पृ-ठ 471.

9.4 इस संदर्भ में यह उल्लेख करना सुसंगत है कि भारत के विधि आयोग ने अभी हाल ही की रिपोर्ट अर्थात् 210वीं रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के निरसरन की सिफारिश की है जिससे कि आत्महत्या करने के प्रयास को गैर अपराधीकृत किया जा सके । काफी पहले 1971 में, विधि आयोग ने अपनी 42वीं रिपोर्ट में कानूनी पुस्तक से धारा 309 के अभिलोपन का अभिवचन किया था । नैतिक और दार्शनिक पहलुओं पर विस्तार से विचार किए गए थे । अरुणा शानबान वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने यह स्प-ट मत व्यक्त किया :

> "हमारी यह राय है कि यद्यपि भा. दं. सं. की धारा 309 को ज्ञान कौन वाले मामले में संवैधानिकतः विधिमान्य ठहराया गया है किन्तु समय आ गया है कि संसद द्वारा इसे हटा दिया जाए क्योंकि यह प्राचीन हो गया है । कोई व्यक्ति निराशा में आत्महत्या का प्रयास करता है इसलिए दंडित करने के बजाय उसे सहायता करने की आवश्यकता है ।"

9.5 उच्चतम न्यायालय ने संसद से धारा 309 को दंड संहिता से हटाने की संभाव्यता पर विचार करने की सिफारिश की थी । यदि संसद अपने विवेक से इस सिफारिश को प्रभावी बनाता है है तो इच्छामृत्यु ही नहीं यहां तक कि सक्रिय इच्छामृत्यु को वैध बनाने के मामले को तर्कसंगत बल मिलेगा । तब किसी दंड कानून में इसे अपराध मानने की कोई धारा नहीं होगी । तथापि, हमें नि-क्रिय इच्छामृत्यु के मामले में इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । यह अपराध नहीं है और ऐसा कोई संवैधानिक नि-ेध नहीं है । तार्किक और मानवीय दृ-टिकोण पूर्णतः नि-क्रिय इच्छामृत्यु के पृ-ठांकन को न्यायोचित ठहराते हैं । नि-क्रिय इच्छामृत्यु के प्रति नैतिक या दार्शनिक धारणाएं और बर्ताव भिन्न-भिन्न हो सकते हैं किन्तु निरापद रूप से यह कहा जा सकता है कि दृ-टिकोण की प्रबलता यह है कि ऐसे विचार मर रहे व्यक्ति को उसके असाध्य, चिरकालिक क-ट, पीड़ा और दर्द से छुटकारा देने के मार्ग में नहीं आते । मानव जीवन की पवित्रता का सिद्धांत जो अनुच्छेद 21 का अभिन्न भाग है, जीवन और मृत्यु के वि-ाय पर स्व-अवधारण का अधिकार जो भी अनुच्छेद 21 की प्रशाखा है, एकान्तता का अधिकार जो अनुच्छेद 21 का एक अन्य पहलू है और आनु-ांगिकतः जटिल स्थितियों में चिकित्सक का कर्तव्य – ये सभी विचार पैदा होंगे जिन्हें एक

दूसरे के प्रति विरोधी समझा जा सकता है यदि अनुच्छेद 21 का विघटित दृ-टिकोण अपनाया जाए । उचित संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए और समग्र दृ-टिकोण अपनाया जाना चाहिए । ऐसा ही भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी 196वीं रिपोर्ट में और भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अरुणा शानबाग वाले मामले में किया गया है । एयरडेल वाले मामले में हाउस आफ लाड्र्स के महत्वपूर्ण विनिश्चय ने अक्षम रोगी की दशा में भी निक्रिय इच्छामृत्यु को मान्यता प्रदान करने और वैध करने के अनुक्रम की रूपरेखा तैयार कर दी है । जैसाकि पहले ही देखा गया है, एयरडेल वाले मामले में रोगी के सर्वोत्तम हित के सिद्धांत को अक्षम रोगियों के संबंध में निक्रिय इच्छामृत्यु को कायम रखने पर बल दिया गया था और तदुपरि इसने अनुमोदन मंजूर करने के लिए न्यायिक अवधारण के दरवाजे खोल दिए । सर्वोत्तम हित के परिकलन में साधारणतः उपचार विनिश्चय जिसके अंतर्गत रोगी की दशा, क-ट की तीव्रता, गरिमा की हानि, पूर्वानुमान और जोखिम, प्रत्येक उपचार के कुप्रभाव और फायदे सम्मिलित हैं, से संबंधित पहलुओं पर उदार विचार अंतवर्लित होता है ।[1]

10 क्या विधान आवश्यक है ?

10.1 अरुणा रामचन्द्र वाले मामले के मार्गदर्शक निर्णय और उसमें दिए गए निदेश अब देशज विधि हो गए हैं । भारत के विधि आयोग ने भी कतिपय सुरक्षोपायों के अधीन रहते हुए निक्रिय इच्छामृत्यु को विधिक मान्यता दिए जाने का जोशीला अभिवाक् किया है । अब निर्णायक और गंभीर प्रश्न यह है कि क्या हमें सरकार को भिन्न मार्ग पर चलने और अरुणा वाले मामले के विनिश्चय के प्रभाव को नि-प्रभावी करने की सिफारिश करनी चाहिए और विश्व के अधिकांश देशों की विधि और पद्धति के प्रतिकूल अनुक्रम अपनाने का सुझाव देना चाहिए ? जैसा हमने पहले कहा है कि ऐसा करने के लिए इस विधि आयोग के समक्ष कोई बाध्यकर कारण नहीं है । इस समय हमारा गंभीर प्रयास केवल उच्चतम न्यायालय और पूर्व विधि आयोग द्वारा अपनाए गए तर्क को पुनःप्रवृत्त करना है । पक्ष और विपक्ष की स्थितियों पर विचार करते हुए, यह आयोग इस देश की चिकित्सा विधिक इतिहास की सुईयों को पीछे करने के बजाए निक्रिय

---

[1] विधि का विकारन - चिकित्सीय प्रौद्योगिकी और विधि (1993) 103 एच एल आर 1519 पृ-ठ 1651-25.

इच्छामृत्यु के औचित्य और वैधता का पुनः उल्लेख करना चाहता है ।

11. निन्क्रिय इच्छामृत्यु – विमर्शित मुद्दे

11.1 पुनरावृत्ति के जोखिम पर, सर्वप्रथम हम ऐसे सक्षम रोगी के मामले पर विचार करेंगे जो गंभीर प्रकृति के मरणांततः रोग से बुरी तरह से ग्रस्त है । चिकित्सक का क्या कर्तव्य है और अनुच्छेद 21 के अधिकार की अंतर्वस्तु चिकित्सक और रोगी को निन्क्रिय इच्छामृत्यु को सुकर बनाने से प्रतिकारित करता है ।

11.2 पूर्वगामी पैराग्राफों में की गई चर्चा और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की महत्वपूर्ण राय और (196वीं रिपोर्ट में) विधि आयोग के विचारित मत सुस्प-ट शब्दों में उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं कि वैधतः और संवैधानिकतः, रोगी (सक्षम) को ऐसे चिकित्सा उपचार को इनकार करने का अधिकार है जिसका उपयोग जीवन का अस्थायी वर्धीकरण करना है । रोगी का जीवन समाप्त प्राय है । सुधार की तनिक भी आशा नहीं है । भयानक क-ट और वदतर मानसिक पीड़ा झेल रहा रोगी कृत्रिम उपायों द्वारा अपने जीवन को बढ़ाना नहीं चाहता है । वह अपने उपचार के लिए खर्च नहीं करना चाहता/चाहती जो व्यवहार्यतः निरर्थक है । वह शारीरिक पीड़ा के बजाय अपनी शारीरिक सुस्वस्थता की परवाह करता है । वह निश्चित मृत्यु होने तक कुछ दिनों या महीनों तक गहन परिचर्या कक्ष में "गोभी" की तरह नहीं जीना चाहता/चाहती । वह एकान्तता के अधिकार को संरक्षित रखना चाहता है जिसका अभिप्राय हस्तक्षेप और शारीरिक आक्रमण से संरक्षण है । ज्ञान कौर वाले मामले में व्यक्त मत के अनुसार उसकी मृत्यु की प्राकृतिक प्रक्रिया पहले ही आरंभ हो चुकी है और वह शांति और मान-मर्यादा के साथ मरना चाहता है । कोई भी विधि ऐसा अनुक्रम चुनने से उसे रोक नहीं सकती । आत्महत्या के प्रयास को अपराध न बनाने के पक्ष के दृन्टिकोण को एकतरफ रखते हुए भी यह आत्महत्या के तुलनीय स्थिति नहीं है । चिकित्सक या नातेदार कृत्रिम साधनों या उपचार द्वारा जबरदस्ती चिकित्सा उपचार लेने को उसे मजबूर नहीं कर सकते । (एयरडेल वाले मामले में लार्ड ब्राउन विकिन्सन की विशि-ट टिप्पणी) पूर्वोक्त उद्धृत विनिश्चयों के अनुसार, यदि उसके शरीर पर बलात चिकित्सा हस्तक्षेप होता है तो चिकित्सक/सर्जन 'हमला' या 'प्रहार' का

दो-ी है । न्यायमूर्ति कार्डोजो[1] के शब्दों में "प्रौढ़ और स्वस्थचित्त प्रत्येक मानव को यह अवधारण करने का अधिकार है कि उसके शरीर के साथ क्या किया जाए और ऐसा सर्जन जो रोगी की सहमति के बिना आपरेशन करता है, ऐसा हमला करता है जिसके लिए वह नुकसानी का दायी है ।" एयरडेल वाले मामले में लार्ड गाफ स्व-अवधारण के अधिकार को उच्च सतह पर रखते हैं । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि "इस तरह की परिस्थितियों में मानव जीवन की पुनीतता के सिद्धांत से स्व-अवधारण के सिद्धांत की उत्पत्ति होती है और रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य करने का चिकित्सक का कर्तव्य उसी तरह रोगी की इच्छा द्वारा अर्ह होना चाहिए । "लार्ड गाफ की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों पर विशि-ट ध्यान दिया जा सकता है :

> "मै यह भी कहना चाहता हूं कि इस तरह के मामलों में न तो रोगी के आत्महत्या करने का और न ही इस प्रकार ऐसा करने में चिकित्सक द्वारा उसकी सहायता करने या दु-प्रेरित का कोई प्रश्न नहीं है । साधारण बात यह है कि क्योंकि रोगी को ऐसा करने का हक है कि इसलिए उसने ऐसे उपचार की सहमति देने से इनकार किया जिसका प्रभाव उसके जीवन को बढ़ानेवाला हो सकता था या होता और चिकित्सक ने अपने कर्तव्य के अनुसार अपने रोगी की इच्छाओं का पालन किया ।"

11.3 जैसाकि पहले ध्यान दिया गया है, सोच की दिशा ज्ञान कौर वाले मामले में व्यक्त सोच जैसी है – जिस पहलू को विधि आयोग द्वारा (अपनी 196वीं रिपोर्ट में) उजागर किया गया है ।

11.4 अनुच्छेद 21 (इस आधार पर निर्मित कि जीवन की पवित्रता को जाखिम में नहीं डाला जा सकता) के अधीन मूल अधिकार के आक्रामक होने से दूर मरणांततः रोगी की दशा में सक्षम रोगी की रुचि और इच्छा को स्वीकार करना उस अधिकार के संवर्धन के लिए अधिक सहायक होगा । यह इसी प्रकार होगा, चाहे हम प्राकृतिक विधि परिप्रेक्ष्य या बुद्धिवादी या सकारात्मक विधिक दिशा से 'जीवन' और इसकी परिभा-ा या अर्थ को समझें । जब जीवन को समाप्त नहीं किया जा सकता या इसके गुणों को

---

[1] 211 एन वाई 125 (1914).

छीना नहीं जा सकता तो जीवन के तत्व क्षीण होने पर रुचि से संबंधित उपबंधों की आलोचना नहीं की जा सकती । हमारे देश में, यू. के. और यू. एस. ए. के महत्वपूर्ण निर्णयों के विभिन्न पैराग्राफों के प्रतिनिर्देश द्वारा पूर्व यथाइंगित अक्षम रोगी की बाबत भी, वस्तुतः अनुच्छेद का अतिक्रमण का प्रश्न नहीं उठता जब प्राणरक्षक उपायों के हटाने का विनिश्चय अक्षम रोगी के सर्वोत्तम हित में किया जाता है विशे-ाकर जब सर्वोत्तम हित का मूल्यांकन की बात उच्च न्यायिक निकाय अर्थात् उच्च न्यायालय पर छोड़ दी गई है । उदाहरणार्थ, दुर्क्रियात्मक शारीरिक अंगों या अक्रियात्मक भागों की दशा में, रोगी के सर्वोत्तम हित में अंगरोपण या अंग विच्छेदन का विनिश्चय लिए जाते हैं । पुनः, गर्भपात विधियां या गर्भपात का चिकित्सीय समापन विधियां सर्वोत्तम हित अवधारण के समरूप दृ-टांत है ।

11.5 क्रूजन वाले मामले (497 यू. एस. 261) में यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि सम्यक् प्रक्रिया खंड निःसंदेह "जीवन में व्यक्ति के हितों और जीवन रक्षक चिकित्सा उपचार को इनकार करने के हित" को संरक्षित करता है ।

11.6 अक्षम रोगी ऐसा रोगी जो पी वी एस या असाध्य मूर्च्छा में हो सकता है, की दशा में उचित दृ-टिकोण क्या है ? क्या उस मामले में (अस्वैच्छिक) निर्क्रिय इच्छामृत्यु की अनुज्ञा दी जानी चाहिए ? क्या कृत्रिम उपायों द्वारा प्राण प्रवर्धन उपचार का समापन करना अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होगा ? यहां पुनः, हम अनुच्छेद 21 का निरपेक्ष या विघटित मत नहीं अपना सकते और यह नि-कर्-ा नहीं निकाल सकते कि प्राण रक्षक प्रणाली का हटाना स्वतः अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण की कोटि में आएगा । एयरडेल[1] वाले मामले में हाफमैन एल. जे. के कथनानुसार 'जीवन की पवित्रता' और 'जीवन के सम्मान' का अर्थ ऐसे बिन्दु तक नहीं निकाला जाना चाहिए जहां इसका वास्तविक सार ही लगभग समाप्त हो जाए जब कि इसके अंतर्गत मानव सुस्वस्थता और रुचि की स्वतंत्रता जैसे अन्य महत्वपूर्ण मूल्यों का बलिदान अंतर्ग्रस्त है ।"

11.7 यह तथ्य कि वह असहाय, अचेत और संवाद शून्य है – क्या यह

---

[1] पूर्वोक्त टिप्पण 3

प्राण रक्षक प्रणालियों को हटाने के मार्ग में आता है यदि इसे उसके सर्वोत्तम हित में समझा जाए और एक बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी स्थिति में संभवतः हटाने का ही विकल्प चुनता ? क्योंकि रोगी स्व-अवधारण के अधिकार का प्रयोग करने की स्थिति में नहीं है, क्या उसके संपूर्ण संक्षिप्त जीवन काल के लिए उस पर कृत्रिम प्राण रक्षक प्रणाली थोपी जानी चाहिए ? क्या उसे बदतर स्थिति में रहने दिया जाना चाहिए क्योंकि वह बोल नहीं सकता, बातचीत नहीं कर सकता या सज्ञान विनिश्चय नहीं कर सकता ? इस संदर्भ में हम सुपरिन्टेडेंट आफ बेल सरटाउन स्टेट आफ स्कूल बनाम सैइकेविज[1] वाले मामले में मैसाच्यूट के उच्चतम न्यायिक न्यायालय द्वारा व्यक्त सुसंगत मत को उद्धृत करते हैं :–

> "यदि यह माना जाए कि अक्षम व्यक्ति को हमेशा इस प्रकार वश में रखा जाता है जिसका समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति इनकार कर सकते हैं, तो यह उसके मूलभूत मानवीय मूल्य और जीवनशक्ति को कम आंकते हुए अक्षम व्यक्ति की प्रास्थिति का दरजा घटाने के समान है ।

11.8 एयरडेल वाले मामले में (अरुणा वाले मामले में एस. सी. सी. के पृ-ठ 502 द्वारा) लार्ड गाफ द्वारा अनुमोदित करते हुए इस कथन को उद्धृत किया गया । उस पैरा को निर्दि-ट करने के पहले, लार्ड गाफ ने यह मत व्यक्त किया : "यह ऐसे मामलों में स्व-अवधारण के सिद्धांत को दी गई प्राथमिकता से मुश्किल से संगत है जिसमें स्वस्थचित्त रोगी ने अपनी सहमति देने से इनकार किया हो, कि विधि को ऐसी उचित परिस्थितियों में जहां रोगी संकेत करने की दशा में नहीं है, समर्थकारी उपचार को रोके जाने के किसी साधन का उपबंध नहीं करना चाहिए, यदि उसकी यह इच्छा थी कि उसने उसकी सहमति नहीं दी थी ।"

11.9 पूरी तरह से यह जानते हुए कि मृत्यु समीप और निश्चित है, निरर्थक प्रकृति का जबरदस्ती उपचार उस पर थोपना अनुचित और अमानवीय होगा । उसे ऐसे रोगी से बदतर स्तर पर नहीं रखा जाएगा जो शांतिपूर्ण रूप से और सुस्वस्थता के साथ मरने के अपने संकल्प और अपनी इच्छा को व्यक्त कर सकता है । यदि वह जीवित रहता तो वह एक

---

[1] 370 एन ई 2 डी 417 (19770.

समझदार मनु-य की तरह सभी संभाव्यता के अनुसार क्या विनिश्चय करता ? क्या यह उसके सर्वोत्तम हित में होगा कि प्राकृतिक अनुक्रम में मरने दिया जाए ? ये विनिश्चय उच्च न्यायालय द्वारा रा-ट्रपिता के रूप में लिए जाने हैं और यह मनमानेपन या अज्ञात विनिश्चयों के विरुद्ध एक कानूनी सुरक्षोपाय होगा । इस संदर्भ में, एयरडेल वाले मामले में लार्ड गाफ के शब्द प्रासंगिक है : ''वस्तुतः यदि ऐसा रोगी जो सहमति देने की क्षमता से रहित है, का उपचार करने का औचित्य इस तथ्य पर निर्भर है कि उसके सर्वोत्तम हित में उपचार उपलब्ध कराया जाए तो इसका यह नि-कर्ा निकलता है कि उपचार समाप्त किया जा सकता है और वस्तुतः अंततः समाप्त कर दिया जाना चाहिए जहां इसे उपचार उपलब्ध कराना अब सर्वोत्तम हित में नहीं है ।'' विद्वान् ला लार्ड के अनुसार, पूछा जाने वाला उचित प्रश्न यह नहीं है, ''क्या यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है कि उसे मर जाना चाहिए । प्रश्न यह है कि क्या यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है कि इस तरह के चिकित्सीय उपचार और परिचर्या को जारी रखकर उसके जीवन को बढ़ाया जाना चाहिए ।''

11.10 मरणांततः रुग्ण रोगी के प्रति अनुकम्पागत चिकित्सा देखभाल का अर्थ आवश्यकतः ऐसे जीवन को कृत्रिम रूप से बढ़ाना नहीं है जो मरणासन्न है और जिसे किसी वस्तुपरक मानकों द्वारा काफी समय तक बनाए नहीं रखा जा सकता है । जीवन रक्षक हस्तक्षेप क-ट कम करने की सहायता के बजाय मरने की दीर्घ प्रक्रिया को और क-टकारी बनाएगा । आयोग का यह मत है कि युक्तियुक्त निर्वचन पर अनुच्छेद 21 अक्षमरोगी के मामले में भी नि-क्रिय इच्छामृत्यु का अवलंब लेने को मना नही करता बशर्ते समग्र मूल्यांकन पर यह उसके सर्वोत्तम हित में समझा जाए । मूल्यांकन करने के चिकित्सक के कर्तव्य और संपूर्ण स्थिति का अवगाहन करने के उच्च न्यायालय के कर्तव्य को ऐसे सर्वोत्तम हित के निर्धारण के लिए निदेशित किया जाता है जो वस्तुतः अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार का विरोध नहीं करता ।

11.11 भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय प्राण या दैहिक स्वतंत्रता के वंचन के विरुद्ध व्यादेश देता है । ''प्राण'' शब्द द्वारा, इसका अभिप्राय मात्र पशुवत अस्तित्व से कुछ और

अधिक है ।" **मुन्न** बनाम **इलिनाइस**[1] वाले मामले में यू. एस. उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति फील्ड के मतानुसार "इसके वंचन के विरुद्ध नि-ेध उन सभी सीमाओं और आयामों तक विस्तारित हो जाता है जिसके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है और इस मताभिव्यक्ति को खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1963) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा उद्धृत किया गया है । 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' पद का निर्वचन मेनका गांधी[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा उचित और न्यायसंगत और ऋजु प्रक्रिया के लिए है न कि किसी प्रकार की प्रक्रिया । अनुच्छेद 21 की व्याप्ति जो आरंभतः प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मनमाने वंचन तक सीमित था, का विस्तार व्यक्ति को गरिमा के साथ जीवन बिताने हेतु समर्थ बनाने के लिए सकारात्मक अधिकारों तक है । पूर्वोक्त ज्ञान कौर वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने भा. दं. सं. की धारा 309 की विधिमान्यता को कायम रखते हुए यह प्रतिपादना अधिकथित किया कि प्राण के अधिकार के अंतर्गत "मरने का अधिकार" नहीं है । इस बाबत, यह इंगित किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 19 के अधिकारों की प्रकृति अर्थात् वाक् स्वातंत्रय जिसके अंतर्गत न बोलने की स्वतंत्रता भी है, की सादृश्यता का प्रयोग अनुच्छेद 21 के अधीन अधिकारों के लिए नहीं किया जा सकता है । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्यु का अधिकार, यदि कोई है, प्राण के अधिकार से अंतनिर्हित रूप से असंगत है । तथापि, न्यायालय ने इस पर बल दिया कि अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार के अंतर्गत प्राकृतिक जीवन की समाप्ति तक मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार है और इसमें मृत्यु की सम्मानित प्रक्रिया भी सम्म्लित है । दूसरे शब्दों में, गरिमा के साथ मरने का अधिकार प्राण के अधिकार के अध्यधीन है । आगे यह स्प-ट किया गया कि जीवन के अंत में गरिमा के साथ मरने के अधिकार को जीवन के प्राकृतिक समय को कम करके अप्राकृतिक मृत्यु कारित कर मरने के अधिकार से भ्रमित या तुलना नहीं की जानी चाहिए । जैसाकि पहले यह उल्लेख किया गया है, पी वी एस रोगी से प्राण रक्षक प्रणाली को हटाने का पहलू जिस पर आयोग की 196वीं रिपोर्ट पर बल दिया गया था, पर विचार करते हुए ज्ञान कौर वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण मत व्यक्त किया गया है । ऐसी स्थिति जिसमें

---

[1] (1877) 94 यू. एस. 113 पृ-ठ 142 पर

[2] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597.

रोगी का सुधार नहीं हो सकता है और जब प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया पहले ही आरंभ हो चुकी है, ऐसे कदम को अनुच्छेद 21 के प्रभाव पर विचार करते हुए, आत्महत्या से भिन्न सतह पर रखा गया था । इस मौके पर हम ज्ञान कौर वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के उपयुक्त मत को उद्धृत करते हैं : ऐसे मर रहे व्यक्ति के संदर्भ में जो मरणांततः रुग्ण है या ऐसे असाध्य स्थिति में है, यह प्रश्न उठता है कि उसे उन परिस्थतियों में अपने जीवन को अपरिवक्व समाप्ति द्वारा अपने जीवन का अंत करने की अनुज्ञा दी जाए । ऐसे मामलों के प्रवर्ग गरिमा के साथ जीने के अधिकार के भाग के रूप में गरिमा के साथ "मरने के अधिकार" की परिधि के भीतर आएगा, जब प्राकृतिक जीवन के समापन के कारण मृत्यु निश्चित और आसन्न है और प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया आरंभ हो गई है । ये जीवन समाप्त करने के मामले नहीं है बल्कि प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया जो पहले ही आरंभ हो चुकी है को समाप्त करने को तेज करने का मार्ग है ।"

11.12 मेनका गांधी (1978) वाले मामले के पश्चात् विधि किसी व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के वि-नय पर उचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया के द्वारा या उसके अधीन विचार कर सकती है । उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा जीवन का अर्थ विभिन्न संघटकों सहित भौतिक और तात्विक स्तर तक निकाला गया है और गरिमापूर्ण और समग्र अस्तित्व के लिए आवश्यक समझा गया है । अंतरर-ट्रीय मानव अधिकार दस्तावेज कई हकदारियों की पहचान और उल्लेख करते हैं जिन्हें स्वतंत्र और सार्थक अस्तित्व के लिए अभिन्न स्वीकार किया जाता है । इन हकदारियों को अब जीवन और स्वतंत्रता का निर्विवाद्य तत्व माना जाता है । जहां राज्य या किसी अन्य निकाय को किसी व्यक्ति से उसके द्वारा धारित जीवन के सभी या किन्हीं लक्षणों को अनावृत्त करने या वंचित करने से रोका जाता है वहीं तब स्थिति भिन्न होगी जब कोई व्यक्ति रुचि या इच्छा के सचेत प्रयोग द्वारा जीवन की किसी विशे-ता का सामान्य उपभोग करने में असमर्थ है । राज्य या चिकित्सा व्यवसायी को जीवन छीनने का दो-ी नहीं ठहराया जाएगा जब विधि रोगी की चिकित्सा देखभाल और प्रक्रिया को हटाकर क्षीण हो रहे आवश्यक लक्षणों से अपना जीवन हीन करने के अनुज्ञात करने की सहायता प्रदान करने का मात्र उपबंध करती है । किसी भी दशा में, नि-पक्ष और युक्तियुक्त प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए और चिकित्सीय कार्मिकों द्वारा सतर्कता बरती जानी चाहिए और उच्च न्यायालय अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण पर आधारित विधि की चुनौती

को अस्वीकार करेगा । यह उल्लेखनीय है कि राज्य प्रस्तावित विधान को अनुमोदित कर जीवन को वंचित नहीं करेगी किन्तु उपरोक्तानुसार, प्रस्तावित विधि उस प्रक्रम पर लागू होगी जब व्यक्ति के पास सुरक्षित और संरक्षित किए जाने के लिए कोई जीवन न रह गया हो और भौतिक और दार्शनिक भाव में इच्छागत क्षमता और जीवन के समग्र लक्षणों से हीन होकर एक निस्सार पात्र रह गया है । इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य ऐसा कुछ छीन रहा है क्योंकि छीनने के लिए ऐसा कुछ विद्यमान नहीं है जिसे संबद्ध व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक या सुसंगत होने के रूप में प्रतिधारित करने का विनिश्चय करता । राज्य से ऐसे किसी व्यक्ति की स्वायतत्ता में हस्तक्षेप करने से वर्जित किया गया है जब स्वायतत्ता अर्थपूर्ण हो । तथापि, जब रोगी अपनी स्वायतत्ता को समझने की स्थिति में नहीं है और अपने मूलभूत और आवश्यक जीवन लक्षणों के अभाव में मृत्यु चाहने या जीवन अपनाने की स्थिति में नहीं है तो निःक्रिय इच्छामृत्यु को अनुमोदित करने के राज्य के न्यायिक अंग के हस्तक्षेप को संबद्ध रोगी के जीवन की पवित्रता की अवधारणा का विरोधी नहीं कहा जा सकता । मानवीय स्वायतत्ता के बाह्य आक्रमणों को निवारित करने का संवैधानिक महत्व मानवीय स्वायतत्ता के उसके नश्वर दशा में दयालुतापूर्ण सहायता पहुंचाने के संवैधानिक महत्व के प्रतिकूल नहीं होगा ।

12. उपशामक देखभाल

12.1 स्वास्थ्य लाभ के प्रक्रम से परे मरणांततः रुग्ण रोगो की उपशामक देखभाल ऐसा सहबद्ध पहलू है जिस पर सरकारों द्वारा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है । जरूरतमंद लोगों के सुलभ और निःशुल्क उपशामक देखभाल करने के लिए दर्द-उपचार और उपशामक देखभाल में चिकित्सकों और चिकित्सा छात्रों का प्रशिक्षण आज की मांग है । चिकित्सावृत्ति को निःक्रिय इच्छामृत्यु जहां आवश्यक है, को प्रभावी बनाने के अलावा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मर रहा रोगी अस्पताल के अन्दर या बाहर शांतिपूर्ण पर्यावरण में उचित देखभाल प्राप्त करता है । ऐसी सूचनाएं हैं कि मार्फिन और अन्य दर्द निवारक ओ-नधियां उपाप्त करने में कठिनाई का सामना करते है जो स्वापक ओ-नधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन विनियमित हैं । उपशामक देखभाल के रास्ते की बाधा को स्वापक ओ-नधि से संबंधित नियमों को परिवर्तित कर, यदि आवश्यक है, दूर किया जाना चाहिए । सरकारों के लिए घोर क-ट और पीड़ा से ग्रस्त मरणांततः

रुग्ण रोगियों को उपशामक देखभाल विस्तारित करने हेतु स्कीम विरचित करने की पूरी आवश्यकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय उपशामक देखभाल एक उपेक्षित क्षेत्र है । ऐसी स्थिति काफी समय तक नहीं बनी रहनी चाहिए । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे रोगी जो आर्थिक रूप से असुविधाग्रस्त हैं या जो समाज के कमजोर वर्गों से है, को ऐसी किसी स्कीम में विशे-ा महत्व मिलेगा ।

13. प्रारूप विधेयक में प्रस्तावित नए परिवर्तन

13.1 धारा 2(घ) – ('अक्षम रोगी' की परिभा-ा) में "16 व-र् की आयु से कम" शब्द जोड़े गए हैं ।

13.2 धारा 3 में दो परिवर्तन किए जाने प्रस्तावित हैं । पहला 16 व-र् से ऊपर (किन्तु 18 व-र् से कम आयु) के रोगी द्वारा लिए गए सज्ञान विनिश्चय को इस शर्त के साथ सक्षम रोगी द्वारा लिए गए विनिश्चय के समतुल्य समझा जाए कि ऐसे मामले में, वयस्क पति/पत्नी और माता-पिता में से एक या ऐसे रोगी के वयस्क पुत्र या पुत्री ने उपचार को समाप्त करने की सहमति दी है । वर्तमान युग के नवयुवकों की समझ और क्षमता के स्तर को ध्यान में रखते हुए, पति/पत्नी और माता-पिता की सहमति के अतिरिक्त सुरक्षोपाय के अध्यधीन रहते हुए इस उपबंध को शामिल करना समुचित समझा गया जिससे कि ऐसे रोगियों को काफी लंबी अवधि तक क-ट के झंझावात को झेलने की आवश्यकता न पड़े ।

13.3 दूसरा, धारा 3 में दूसरा परंतुक जोड़ा गया है जिससे कि चिकित्सक को रोगी के पति/पत्नी या सगे नातेदार को सक्षम रोगी द्वारा लिए गए विनिश्चय या किए गए अनुरोध से संबंधित जानकारी देने और इसके पश्चात् तीन दिनों की अवधि तक उपचार को समाप्त करने से रोकने के लिए आबद्धकर बनाया जा सके । यह समय अंतराल रोगी और नातेदारों के बीच और सोच विचार करने को सुकर बनाने के लिए आवश्यक हो सकता है ।

13.4 धारा 7 (धारा 4 के रूप में पुनर्संख्याकिंत)

(i) 'धारा 6' शब्द का लोप करे और 'इस अधिनियम' शब्द को प्रतिस्थापित करें ।

(ii) धारा 7 (धारा 4 पुनर्संख्यांकित) की उपधारा (2) को इस प्रकार परिवर्तित किया जाए :

"उपधारा (7) में निर्दि-ट पैनल में 'चिकित्सा, शल्यक्रिया, असाध्य देखभाल दवा या कोई अन्य विशे-ाज्ञता जो उक्त प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किया जाए, जैसे विभिन्न शाखाओं के अनुभवी चिकित्सा विशे-ाज्ञों को सम्मिलित किया जाएगा ।

(iii) धारा 7 (पुनर्संख्यांकित धारा 4) की उपधारा (3) और (4) का लोप किया जाए क्योंकि यह उपबंध या तो अनावश्यक है या केन्द्र या राज्य के उच्च चिकित्सा प्राधिकारी को प्रदत्त विकल्प की स्वतंत्रता में असम्यक् बाधा पहुंचा सकता है ।

(iv) धारा 4 (पुरानी धारा 7) में निम्नलिखित उपबंध को उपधारा (3) के रूप में जोड़ा जाए :

स्वास्थ्य सेवाएं महानिदेशक यावत्सात्य, एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए पैनल के गठन के बारे में चिकित्सा सेवा निदेशक या समतुल्य पंक्ति के अधिकारियों से परामर्श कर सकेगा ।

धारा 7 की उपधारा (5) (नई धारा 4 की उपधारा (4) पुनर्संख्यांकित) में 'शासकीय राजपत्र' प्रतिनिर्देश का लोप किया जाए क्योंकि यह कोई उपयोगी प्रयोजन पूरा नहीं करती ।

13.5 धारा 8 (पुनर्संसंख्यांकित धारा 5) को इस प्रकार परिवर्तित किया जाए : – धारा 8 की उपधारा (1) में आने वाले 'रजिस्टर में' शब्दों का लोप किया जाए क्योंकि ये बिल्कुल समुचित नहीं हैं । उपधारा (1) के खंड (ग) के पश्चात्, "प्राप्त विशे-ाज्ञ सलाह के अनुसार ..... "शब्दों का लोप किया जाए । उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में अब सुझाए गए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, उक्त अभिव्यक्ति असंगत हो गई है क्योंकि विशे-ाज्ञ राय उच्च न्यायालय द्वारा अभिप्राप्त की जानी है । उसके स्थान पर, धारा 8 (पुनर्संख्यांकित धारा 5) की उपधारा (1) के अंतिम पैरा में 'और नियमित रूप से रोगी के पास उपलब्ध रहने वाले पति/पत्नी या अन्य सगे नातेदर का नाम' शब्द रखा जाए । धारा 8 (नई धारा 5) की उपधारा (2) में, 'विनिश्चय शब्द के बजाय 'आवश्यकता या अन्यथा' शब्द रखा जाए । धारा 8 (नई धारा 5)

की उपधारा (3) से (6) का लोप किया जाए क्योंकि ये सुझाए गए मुख्य परिवर्तन को दृ-टिगत करते हुए असंगत हैं ।

13.6 धारा 11 (पुनर्संख्यांकित धारा 8) के खंड (ख) का लोप किया जाए और धारा 11 (नई धारा 8) के उपखंड (ii) के पश्चात् आने वाले विद्यमान परंतुक में, 'धारा 5 और 6' शब्दों का लोप किया जाए और केवल धारा 8 को प्रतिधारित किया जाए । धारा 11 [खंड (ii) के पश्चात्] के अंतिम वाक्य में "किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों को भी जोड़ा जाए । यह उचित सतर्कता के लिए है ।

13.7 सर्वाधिक निर्णायक परिवर्तन धारा 12 के प्रतिनिर्देश से है । धारा 12 (धारा 9 के रूप में पुनर्संख्यांकित) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाए :–

> "धारा 9 : उच्च न्यायालय से अभिप्राप्त की जाने वाली अनुज्ञा और प्रक्रिया
>
> (1) कोई सगा नातेदार, करीबी मित्र, रोगी का विधिक संरक्षक, चिकित्सा व्यवसायी या सामान्यतः रोगी की परिचर्या करने वाला अर्द्ध चिकित्सीय स्टाफ या अस्पताल जहां रोगी उपचार प्राप्त कर रहा है, का प्रबंध मंडल या न्यायालय की इजाजत से कोई अन्य व्यक्ति, अक्षम रोगी या ऐसा सक्षम रोगी जिसने सज्ञान विनिश्चय नहीं लिया है, का चिकित्सा उपचार रोकने या हटाने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन कर सकेगा ।
>
> (2) ऐसे आवेदन को मूल अर्जी समझा जाएगा और उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति समय गंवाए बिना इसे खंड न्यायपीठ को समनुदेशित करेगा और उच्च न्यायालय द्वारा यावतसाध्य एक मास के भीतर इसका निपटान किया जाएगा ।
>
> परंतु उपधारा (1) के अधीन अनुज्ञा चाहने के लिए सभी तात्विक विशि-टियों वाले उपरोक्त वर्णित किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय के महारजिस्ट्रार या न्यायिक रजिस्ट्रार को संबोधित पत्र को अविलंब मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाएगा और पत्र को मूल अर्जी समझा जाएगा ।

(3) उच्च न्यायालय का खंड न्यायपीठ, जहां वह आवश्यक समझे, न्यायालय की सहायता के लिए न्यायमित्र नियुक्त कर सकेगा और जहां रोगी का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है, ऐसे रोगी को प्रत्यक्ष विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाएगी ।

(4) उच्च न्यायालय ऐसे तीन विशे-नज्ञ चिकित्सा व्यवसायी जिनके नाम धारा 4 के अधीन तैयार पैनल में है या किसी अन्य विशे-नज्ञ चिकित्सा व्यवसायी यदि आवश्यक समझे, से विशे-नज्ञ चिकित्सा राय अभिप्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और विशे-नज्ञों को दिए जाने वाले पारितोनिक संदाय के लिए समुचित निदेश देगा ।

(5) उच्च न्यायालय, विशे-नज्ञों के पैनल की रिपोर्ट और सगे नातेदारों या विधिक संरक्षक या उनके अभाव में नोटिस देकर ऐसे अन्य व्यक्ति जिन्हें उच्च न्यायालय ठीक समझे, की इच्छाओं और रोगी के सर्वोत्तम हित पर सम्यक् विचार करते हुए, किन्हीं शर्तों के अधीन अनुज्ञा देने या अनुज्ञा न देने या देने से इनकार करने का आदेश पारित करेगा ।

(6) चिकित्सा व्यवसायी या अस्पताल प्रबंध मंडल या स्टाफ जो उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार संबद्ध रोगी के चिकित्सा उपचार को रोकता या हटाता है, प्रवृत्त किसी अन्य विधि के होते हुए भी किसी आपराधिक या सिविल दायित्व से मुक्त किया जाएगा ।

13.8 विधि आयोग यह महसूस करता है कि अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रक्रिया को अपनाना निरापद और वांछनीय है जिससे कि उच्च न्यायालय का अनुमोदन प्राणरक्षक उपायों को रोकने के लिए पूर्ववर्ती शर्त होगी । विशे-नज्ञों के पैनल की राय अभिप्राप्त करने का प्रश्न तभी उठेगा जब सगे नातेदारों, करीबी मित्रों या परिचर्या कर रहे चिकित्सक/अस्पताल द्वारा उच्च न्यायालय के अनुमोदन की मांग की जाती है । उच्चतम न्यायालय ने एयरडेल और अन्य मामलों की अभ्युक्ति का अनुसरण करते हुए, उच्च न्यायालय को रा-ट्रपिता अधिकारिता प्रदान

करना समुचित समझा । विधि आयोग (अपने 196वीं रिपोर्ट में) ने भी विशे-नज्ञ चिकित्सा सलाह जो उसने अभिप्राप्त किया है, पर आधारित मरणांततः रुग्ण रोगी को प्राण रक्षक उपचार के प्रस्तावित समापन के बारे में चिकित्सा व्यवसायी द्वारा नातेदारों को सूचित करने के पश्चात् उच्च न्यायालय में घो-णात्मक अनुतो-न चाहने हेतु समर्थकारी उपबंध का उपबंध करने के लिए यू. के. के सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा विनिश्चित इंग्लिश मामलों से समर्थन प्राप्त किया था । यह आयोग उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के पक्ष में आनत है क्योंकि यह न्यायालय (एस. सी. सी. के पैरा125 द्वारा) व्यक्त आशंकाओं को न-ट करेगा । इसके अतिरिक्त, जब जीवन के अधिकार कायम पर विचार किया जा रहा है तो यह वांछनीय है कि उच्च न्यायालय विशे-नज्ञ चिकित्सा सलाह, आदि के आधार पर पक्ष और विपक्ष पर विचार करते हुए दायित्व निभाए और समुचित विनिश्चय करे । वस्तुतः, आयोग के एक सदस्य श्री अमरजीत सिंह ने यह भी आशंका व्यक्त की कि हमारे देश में सामाजिक आर्थिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, लालची नातेदार जो असाध्य रुग्ण रोगी के धन में हितबद्ध है, मृत्यु की प्रक्रिया को तेज करने के नापाक इरादे के साथ दु-कृति भी कर सकते हैं । अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा भी ढुलमुल चिकित्सकों की सहायता से लालची नातेदारों द्वारा संभवतः छलसाधन किए जाने का उल्लेख किया गया है । इन सभी पहलुओं पर ध्यान देते हुए हम इस विस्तार तक 196वीं रिपोर्ट की सिफारिश से भिन्न मत व्यक्त करते हैं ।

13.9 एक ऐसा दृ-टिकोण है कि उच्च न्यायालय में आवेदन करने में खर्चा अंतर्वलित होगा और विनिश्चय में अनावश्यक विलंब होगा । इसके बजाय, 17वें विधि आयोग द्वारा सुझाई गई प्रक्रिया बेहतर विकल्प होगा । यद्यपि यह दृ-टिकोण निःसार नहीं है, फिर भी, पक्ष और विपक्ष पर विचार करने पर आयोग अरुणा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाए गए अनुक्रम को अधिमानता प्रदान करता है । इस प्रक्रम पर, यह नहीं माना जा सकता है कि उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में विलंब होगा । विहित समय सीमा और अन्यथा भी मामले की प्रवृत्ति और इसकी संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय निश्चित ही ऐसे मामलों को मुख्य पूर्विकता प्रदान करेगा । जहां तक खर्चे का संबंध है, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन महिलाओं, निःशक्त व्यक्तियों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति और कम आय समूह के लोगों

को विधिक सहायता उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय पत्र के आधार पर कार्रवाई करने के लिए समर्थ है और न्यायालय याची की ओर से किसी अधिवक्ता के अभाव में न्यायालय की सहायता करने के लिए न्यायमित्र भी नियुक्त कर सकता है । उच्चतम न्यायालय के कथनानुसार, जब न्यायालय रा-ट्रपिता अधिकारिता का प्रयोग कर रहा है तो पणाधारियों को विधिक सहायता के रूप में कोई अड़चन नहीं होगी क्योंकि न्यायालय इसे सुनिश्चित करेगा । अनुभव से हमें पता चलेगा कि इस समय परिकल्पित प्रक्रिया से ठीक तरह से कार्य हो रहा है या किसी परिवर्तन की आवश्यकता है । इस प्रक्रम पर कुल मिलाकर आयोग यह कहना चाहता है कि यह सर्वोत्तम प्रयास है ।

13.10 तथापि, हम विशे-ाज्ञों के पैनल के चयन से संबंधित उच्चतम न्यायालय द्वारा सुझाए गए तरीके के बारे में एक कैविएट का सुझाव देना चाहते हैं । आयोग का यह मत है कि उच्च न्यायालय को समय-समय पर चिकित्सा विशे-ाज्ञों का पैनल तैयार करने के कार्य से बोझिल नहीं किया जाना चाहिए । 196वीं रिपोर्ट में विधि आयोग द्वारा सुझाया गया अनुक्रम बेहतर और अधिक समीचीन होगा । पैनल केन्द्र या राज्य के सर्वोच्च चिकित्सा निकाय द्वारा तैयार किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, ऐसे विशे-ाज्ञ पैनल का गठन अर्थात्, किन विशे-ाज्ञों को पैनल में शामिल किया जाए या क्या एक से अधिक संयोजन हो, का कार्य महानिदेशक या निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं पर छोड़ देना बेहतर है जो विशे-ाा अधिकारी हैं । अतः, यह बेहतर है कि महानिदेशक/निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं पैनल के गठन का विनिश्चय करें और विभिन्न क्षेत्रों से विशे-ाज्ञों की सूची तैयार करें । उच्च न्यायालय किसी अन्य विशे-ाज्ञ की सूची तैयार करे । उच्च न्यायालय किसी अन्य विशे-ाा को अतिरिक्त या किसी विशे-ाज्ञ के स्थान पर नामित करने के अवशि-ट विवेकाधिकार के अधीन रहते हुए उक्त प्राधिकारियों द्वारा तैयार पैनल के अनुसार विशे-ाज्ञ नामित करेगा ।

13.11 दूसरा, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकृति के मामलों पर विचार करने के वि-नय पर समुचित आदेश पारित करने की संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता की महत्ता पर विस्तार से विचार किया । उच्चतम न्यायालय के निर्णय में उद्धृत इंग्लिश मामलों पर विधि आयोग के पूर्व रिपोर्टों में, यह मत व्यक्त किया गया है कि संबद्ध व्यक्ति घो-णात्मक अनुतो-ा के लिए उच्च न्यायालय के कुटुम्ब

प्रभाग में आवेदन कर सकता है । जहां विधान बनाए जाने तक अरुणा वाले मामले के निर्णय के आधार पर उच्च न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ग्रहण की जा सकती है, वहीं उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के अधीन विशे-न उपचार उपबंध करना और उचित होगा । 196वीं रिपोर्ट के अनुसार इस प्रवर्ग के मामलों को समाहित करने के लिए विनिर्दि-ट रूप से आरंभिक याचिका का उपबंध करना वांछनीय है । आनु-ंगिकतः, यह प्राइवेट निकायों या व्यक्तियों के विरुद्ध रिट याचिका की संघार्यता पर संभाव्य बहस को समाप्त कर देगा । वस्तुतः चाहे यह आरंभिक याचिका हो या अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका हो, दृ-टिकोण एक जैसा ही होगा । किसी विनिर्दि-ट उपबंध द्वारा उच्च न्यायालय के पास विनिर्दि-ट अधिकारिता विनिहित किए जाने पर उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही के बजाए अधिनियम के विशे-न उपबंध के अधीन अधिकारिता को प्रयोग करेगा । वहीं, हम एक ऐसे उपबंध के अंतःस्थापन का सुझाव देते हैं जिसके अधीन उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को संबोधित पत्र भी संज्ञान लिया जा सकता है ।

13.12 आयोग ने यह मत है कि किसी अक्षम रोगी के प्राणरक्षक प्रणाली के प्रस्तावित हटाने के लिए उच्च न्यायालय का अनुमोदन चाहने के उन इच्छुक व्यक्तियों द्वारा फाइल सभी तात्विक विशि-टियों वाले उच्च न्यायालय के महारजिस्ट्रार को संबोधित पत्र को औपचारिकताओं पर बल दिए बिना मूल अर्जी समझा जाएगा । उक्त पत्र माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाएगा और कार्रवाई की जाएगी ।

13.13 तदनुसार, मरणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) विधेयक, 2006 में इस विधि आयोग द्वारा इस रिपोर्ट में परिवर्तन प्रस्तावित है और यथाउपांतरित और पुनःसंशोधित विधेयक उपाबंध -1 पर है ।

14 सिफारिशों का संक्षिप्तांश

14.1 नि-क्रिय इच्छामृत्यु, जो कई देशों में अनुज्ञात है, की भारत के 17वें विधि आयोग के सुझाव के अनुसार और अरुणा रामचन्द्र [(2011) 4 एस. सी. सी. सी. 454] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथाअभिनिर्धारित कतिपय सुरक्षोपायों के अधीन रहते हुए हमारे देश में भी

विधिक मान्यता होगी । यह विधिक और संवैधानिक दृ-टिकोण से आक्षेपणीय नहीं है ।

14.2 सक्षम प्रौढ़ रोगी को इस बात पर बल देने का अधिकार है कि कृत्रिम प्राण रक्षक उपायों/उपचार के माध्यम से जबर्दस्ती चिकित्सा उपचार नहीं दिया जाना चाहिए और ऐसा विनिश्चय ऐसे रोगी की परिचर्या कर रहे चिकित्सकों/अस्पताल पर आबद्धकर है बशर्ते चिकित्सक का यह समाधान होता हो कि रोगी अपनी इच्छा के स्वतंत्र प्रयोग के आधार पर 'सज्ञान विनिश्चय' लिया है । यही नियम 16 व-र् की आयु के ऐसे अवयस्क को लागू होगा जिसने ऐसा उपचार न लेने की अपनी इच्छा व्यक्त की है बशर्ते सहमति वयस्क पति/पत्नी और ऐसे अवयस्क रोगी के माता-पिता में से एक द्वारा दी गई है ।

14.3 असाध्य मूर्च्छा या सतत जड़ दशा के व्यक्ति जैसे अक्षम रोगी और ऐसे सक्षम रोगी जिसने 'सज्ञान विनिश्चय' नहीं लिया है, के बारे में चिकित्सा उपचार रोकने या हटाने का चिकित्सक या नातेदारों का विनिश्चय अंतिम नहीं है । नातेदार, करीबी मित्र या संबद्ध चिकित्सक/अस्पताल प्रबंधतंत्र प्राण रक्षक उपचार को रोकने या हटाने के लिए उच्च न्यायालय से अनापत्ति प्रमाणपत्र अभिप्राप्त करेंगे ।

इस संबंध में, 196वीं रिपोर्ट में विधि आयोग की सिफारिश कुछ भिन्न है । विधि आयोग ने उच्च न्यायालय में आवेदन करने के एक समर्थकारी उपबंध का प्रस्ताव किया है ।

14.4 उच्च न्यायालय तीन चिकित्सा विशे-ज्ञों के पैनल की राय अभिप्राप्त करने और रोगी के नातेदारों की इच्छाएं सुनिश्चित करने के पश्चात् विनिश्चय लेगा । रा-ट्रपिता के रूप में उच्च न्यायालय रोगी के सर्वोत्तम हितों को ध्यान में रखते हुए समुचित विनिश्चय करेगा ।

14.5 ऐसे चिकित्सा व्यवसायी और अन्य लोग जो सक्षम रोगी की इच्छाओं या उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं, को आपराधिक या सिविल कार्रवाई से संरक्षण प्रदान करने के लिए उपबंध सम्मिलित किए गए हैं । इसके अतिरिक्त, चिकित्सा उपचार से इनकार करने वाले सक्षम रोगी (जो मरणांततः रुग्ण है) को किसी विधि के अधीन

किसी अपराध को दो-नी नहीं समझा जाएगा ।

14.6 17 वें विधि आयोग की सिफारिशों के अनुरूप मोटे तौर पर पैनल की तैयारी की प्रक्रिया को उपवर्णित किया गया है । अपनी बीमारी के पहले रोगी द्वारा दिया गया अग्रिम चिकित्सा निदेश विधिमान्य नहीं है ।

14.7 इस बात के होते हुए भी कि चिकित्सा उपचार उपरोक्त निर्दि-ट उपबंधों के अनुसार रोका या हटाया गया है, उपशामक देखभाल का विस्तार सक्षम और अक्षम रोगियों तक किया जा सकता है ।

सरकारों को असाध्य पीड़ा से जूझ रहे मरणांततः रुग्ण रोगियों को आसान खर्चे पर उपशामक देखभाल की स्कीम बनानी चाहिए ।

14.8 भारतीय चिकित्सा परि-ाद से मरणांततः रोग से ग्रस्त सक्षम या अक्षम रोगियों के चिकित्सा उपचार को रोकने या हटाने के मामले में मार्गदर्शक सिद्धांत जारी करने की अपेक्षा है ।

14.9 196वीं रिपोर्ट में 17वें विधि आयोग द्वारा प्रारूपित मरणांततः रुग्ण रोगी का चिकित्सा उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) विधेयक, 2006 को उपांतरित और पुनरीक्षित किया गया है । व्यवहार्यतः विधेयक विधि आयोग की पूर्व सिफारिशों और अरुणा रामचन्द्र वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के मतों/निदेशों का सम्मिश्रण है । पुनरीक्षित विधेयक उपाबंध -1 पर है ।

ह0/-
[न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) पी. वी. रेड्डी]
अध्यक्ष

ह0/-
[न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) शिवकुमार शर्मा]
सदस्य

ह0/-
[अमरजीत सिंह]
सदस्य

नई दिल्ली
11 अगस्त, 2012

उपाबद्ध -1
[रिपोर्ट के पैरा 13.13 का प्रतिनिर्देश करें]

मरणांततः रूग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) विधेयक

रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों को रोगियों, जो मरणांततः रूग्ण हैं, से जीवन समर्थन प्रणालियां सहित चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटाने के संदर्भ में दायित्व से संरक्षण के लिए उपबंध करने के लिए एक विधेयक ।

भारत गणराज्य के बासठवें व-र्ा में निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :

1. **सक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ :** (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मरणांततः रूग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायों का संरक्षण) अधिनियम है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू और कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत तक है ।

(3) यह उस तारीख से प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा राजपत्र में नियत करे ।

2. **परिभा-ाएं :** जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(क) 'अग्रिम चिकित्सीय निदेश' (जिसे जीवन वसीयत कहा गया है) से किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई निदेश अभिप्रेत है कि भवि-य में चिकित्सा उपचार नहीं दिया जाए जब वह मरणांततः रूग्ण होता या होती है ।

(ख) 'सर्वोत्तम हित' में किसी ऐसे रोगी का सर्वोत्तम हित सम्मिलित है –

(i) जो अक्षम रोगी है, या

(ii) जो सक्षम रोगी है किन्तु जिसने कोई सज्ञान निर्णय नहीं लिया है और

रोगी के चिकित्सीय हितों को सीमित नहीं करता किन्तु रोगी के आचार संबंधी, सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और अन्य कल्याणकारी प्रतिफलों को सम्मिलित करते हैं ।

(ग) 'सक्षम रोगी' से ऐसा रोगी अभिप्रेत है जो 'अक्षम रोगी' नहीं है ।

(घ) 'अक्षम रोगी' से ऐसा कोई रोगी जो अवयस्क या विकृतचित्त व्यक्ति है या ऐसा कोई रोगी अभिप्रेत है जो –

(i) उसके चिकित्सीय उपचार के बारे में सज्ञान निर्णय की सुसंगत सूचना को समझने में ;

(ii) उस सूचना को प्रतिधारण करने ;

(iii) उस सूचना का अपने सज्ञान निर्णय की प्रक्रिया के भाग के रूप में उपयोग करने या विचार करने ;

(iv) अपने चित्त या मस्ति-क के कार्य करने में ह्रास के या किसी परेशानी के कारण कोई सज्ञान निर्णय करने में ; या

(v) चिकित्सा उपचार के संबंध में अपने सज्ञान निर्णय (चाहे वाणी, संकेत, भा-ा या किसी अन्य रूप में) अपने सज्ञान निर्णय को संसूचित करने में,

असमर्थ है ।

(ङ) 'सज्ञान निर्णय' से अभिप्रेत है किसी ऐसे रोगी द्वारा चिकित्सीय उपचार के शुरू करने या जारी रखने या बंद करने या हटा लेने के बारे में निर्णय जो सक्षम है और जिसे –

(i) उसके रोग की प्रकृति,

(ii) उपचार का कोई वैकप्लिक रूप जो उपलब्ध हो सकेगा,

(iii) उपचार के उन रूपों के परिणामों, और

(iv) शे-न अनउपचार के परिणामों,

के बारे में सूचित किया जाता है या किया गया है ।"

(च) 'भारतीय चिकित्सा परि-द' से भारतीय चिकित्सा परि-द अधिनियम, 1956 (1956 का 102) के अधीन गठित भारतीय चिकित्सा परि-द अभिप्रेत है ।

(छ) 'चिकित्सा व्यवसायी' से ऐसा चिकित्सा व्यवसायी जिसके पास भारतीय चिकित्सा परि-द अधिनियम, 1956 (1956 का 102) की धारा 2 के खंड त्रज) में यथा परिभा-ित कोई मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हता अभिप्रेत है और जो, उस धारा के खंड (ट) में यथा परिभा-ात किसी राज्य चिकित्सा रजिस्टर में नामांकित है ।

(ज) 'चिकित्सीय पावर ऑफ अटर्नी' से भवि-य में ऐसे चिकित्सीय उपचार के विनिश्चयों दस्तावेज अभिप्रेत है, जो उसे दिया जाना है या नहीं दिया जाना है यदि वह मरणांततः रूग्ण हो जाता/जाती है और अक्षम रोगी हो जाता/जाती है ।

(झ) 'चिकित्सीय उपचार' से अभिप्रेत है बनाए रखने, प्रत्यावर्तन करने या महत्वपूर्ण कार्यों को बदलने के लिए आशयित उपचार जो, जब मरणांतकः रोग से पीड़ित किसी रोगी को लागू हुआ है, केवल मृत्युकालिक प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए ठीक होगा और इसमें सम्मिलित है –

(i) शल्यक आपरेशन या औ-नधि का प्रबंध या किसी अन्य चिकित्सीय प्रक्रिया का नि-पादन करने के रूप में जीवन कायम रखने वाला उपचार ; और

(ii) संवातन, कृत्रिम पो-ाहार और जलयोजन तथा ह्रदयफुप्फुसीय पुनरूज्जीवन जैसे यांत्रिक और कृत्रिम साधनों का उपयोग ।

(ञ) 'अवयस्क' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 4) के उपबंधों के अधीन वयस्कता

प्राप्त नहीं किया गया माना गया है ।

(ट) 'उपशामक उपचार' में सम्मिलित है –

(i) शारीरिक दर्द, पीड़ा, क-टकारी या भावुक और मनो-सामाजिक पीड़ा से राहत के लिए युक्तियुक्त चिकित्सा और नर्सिंग प्रक्रियाओं का उपबंध ।

(ii) भोजन और जल के लिए युक्तियुक्त उपबंध ।

(ठ) 'रोगी' से ऐसा रोगी अभिप्रेत है जो मरणांतकः रोग से पीड़ित है ।

(ड) 'मरणांतकः रोग' से अभिप्रेत है –

(i) ऐसा रोग, क्षति या शारीरिक या मानसिक दशा का अपक्षय जो रोगी के लिए नितान्त दर्द और पीड़ा का कारण है और जो युक्तियुक्त चिकित्सा राय के अनुसार संबंधित रोगी की असमय मृत्यु का अपरिहार्य कारण होगी ; या

(ii) जो किसी दृढ़ और अनुत्क्रमणभ्य वर्धी दशा के कारण है जिसके अधीन रोगी के लिए जीवन का अर्थपूर्ण अस्तित्व संभव नहीं है ।

3. सक्षम रोगी द्वारा चिकित्सीय उपचार से इंकार करना और इसकी चिकित्सा व्यवसायियों पर बाध्यकारी प्रकृति : (1) 16 व-र्ा की आयु से अधिक के अवयस्क सहित प्रत्येक सक्षम रोगी को –

(i) स्वयं (स्त्री/पुरु-ा) के चिकित्सीय उपचार के बंद करने या हटाने और प्रकृति को अपना कार्य करने देने, या

(ii) स्वयं (स्त्री/पुरु-ा) के चिकित्सीय उपचार को आरम्भ करने या जारी रखने के लिए,

निर्णय लेने और उसकी परिचर्या कर रहे चिकित्सा व्यवसायी से इच्छा व्यक्त करने का अधिकार है ।

(2) उपधारा (1) में निर्देशित जब कोई रोगी अपना (स्त्री/पुरु-ा) निर्णय चिकित्सा व्यवसायी को संसूचित करता है तो, ऐसा निर्णय चिकित्सा व्यवसायी पर बाध्यकारी है ।

परन्तु यदि चिकित्सा व्यवसायी का समाधान हो गया है कि रोगी

सक्षम है और यह कि रोगी ने अपनी (स्त्री/पुरु-ा) स्वैच्छा से मुक्त कयावद के आधार पर सज्ञान निर्णय किया है । परंतु यह और कि 16 की आयु से अधिक के अवयस्क के मामले में सहमति वयस्क पति/पत्नी और माता-पिता द्वारा सहमति दी जानी चाहिए ।

(3) सक्षम रोगी के विनिश्चय को प्रभावी बनाने पर आगे कार्यवाही करने के पूर्व, चिकित्सा व्यवसायी पति/पत्नी, माता-पिता या रोगी का वयस्क पुत्र या पुत्री या उसके अभाव में आवश्यकता या अन्यथा के बारे में अस्पताल में नियमित रूप से आने वाल किसी नातेदार या अन्य व्यक्ति को रोगी से चिकित्सा उपचार रोकने या हटाने को सूचित करेगा और उक्त के नातेदारों को सूचना देने के पश्चात् तीन दिनों की अवधि तक विनिश्चय को प्रभावी बनाने से रुका रहेगा ।

4. चिकित्सा विशे-ाज्ञों को पैनल तैयार करने का प्राधिकार – (1) केन्द्रीय सरकार का स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक और प्रत्येक राज्य का चिकित्सा सेवा निदेशक (या समतुल्य पद धारित करने वाला अधिकारी) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए चिकित्सा विशे-ाज्ञों का पैनल तैयार किया जा सकेगा और विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार एक से अधिक पैनल अधिरोपित किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दि-ट पैनल में चिकित्सा, शल्यक्रिया, संकटकालीन देखभाल दवा या उक्त प्राधिकारी द्वारा यथाविनिश्चित कोई अन्य विशे-ाज्ञता जैसी विभिन्न शाखाओं के अनुभवी चिकित्सा विशे-ाज्ञ सम्मिलित होंगे ।

(3) स्वास्थ्य सेवाएं महानिदेशक, यावत्साध्य समरूपता सुनिश्चित करने के लिए पैनल के गठन के बारे में चिकित्सा सेवा निदेशक या समतुल्य पंक्ति के अधिकारियों से परामर्श कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन तैयार किए गए पैनल को उक्त प्राधिकारियों को संबद्ध वेबसाइट में प्रकाशित किया जाएगा और समय-समय पर उपधारा (1) में विनिर्दि-ट प्राधिकारियों द्वारा पैनल का पुनरीक्षण और उपांतरण किया जा सकेगा और ऐसे उपांतरणों को यथास्थिति, बेवसाइट में भी प्रकाशित किया जाएगा ।

5. चिकित्सीय व्यवसायी का रजिस्टर बनाना और रोगी, माता-पिता आदि को सूचित करना : रोगी की परिचर्या करने वाला चिकित्सा व्यवसायी आयु और पूरा पता, रोग की प्रकृति और दिया जाने वाला उपचार तथा पति/पत्नी, माता-पिता या वयस्क पुत्र या पुत्री का नाम, रोगी द्वारा संसूचित अनुरोध या विनिश्चय, यदि कोई है और उसकी राय कि क्या यह उपचार को रोकना या हटाना रोगी के सर्वोत्तम हित में होगा, जैसे रोगी के व्यक्तिगत ब्यौरे वाला एक अभिलेख बनाएगा, चिकित्सा व्यवसायी रोगी यदि सचेत है और रोगी पति/पत्नी, माता/पिता या वयस्क पुत्र या पुत्री या उनके अभाव में आवश्यकता या अन्यथा के बारे में अस्पताल में नियमित रूप से आने वाले व्यक्तियों को रोगी से उपचार रोकने या हटाने की सूचना देगा ।

6. सक्षम और अक्षम रोगियों के लिए उपशामक उपचार :

यद्यपि चिकित्सा व्यवसायी ने पूर्वगामी उपबंधों के अनुसार सक्षम रोगियों और अक्षम रोगियों के चिकित्सीय उपचार को बंद कर दिया है या हटा लिया है, फिर भी ऐसे चिकित्सा व्यवसायी को उपशामक उपचार का प्रबंध करने से विवर्जित नहीं किया जाता है ।

7. कतिपय परिस्थितियों में दांडिक कार्रवाई से सक्षम रोगियों का संरक्षण : जहां कोई सक्षम रोगी धारा 3 में उल्लिखित परिस्थितियों में चिकित्सीय उपचार से इनकार करता है तो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी ऐसा कोई रोगी उस संहिता या सत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन किसी अपराध का दो-ी नहीं माना जाएगा ।

8. सक्षम और अक्षम रोगियों के संबंध में चिकित्सा व्यवसायियों और उनके निदेश के अधीन कार्य करने वाले अन्यों का संरक्षण : जहां कोई चिकित्सा व्यवसायी या चिकित्सा व्यवसायी के निदेश के अधीन कार्य करने वाला कोई अन्य व्यक्ति सक्षम रोगी के संबंध में, ऐसे रोगी के व्यक्त इच्छा के आधार पर जो चिकित्सा व्यवसायी के निर्धारण पर उसके सर्वोत्तम हित में है, चिकित्सा उपचार रोकता है या हटाता है तो किसी अन्य विधि में अंतर्वि-ट किसी बात के होते हुए भी, चिकित्सा व्यवसायी या उसके निदेश

के अधीन कार्य करने वाले व्यक्ति या संबद्ध अस्पताल की ऐसी कार्रवाई विधि संगत समझी जाएगी बशर्ते चिकित्सा व्यवसायी ने धारा 3 और 5 की अपेक्षाओं को पूरा किया हो ।

9. उच्च न्यायालय से अभिप्राप्त की जाने वाली अनुज्ञा और प्रक्रिया (1) कोई सगा नातेदार, करीबी मित्र, रोगी का विधिक संरक्षक, चिकित्सा व्यवसायी या सामान्यतः रोगी की परिचर्या करने वाला अर्द्ध चिकित्सीय स्टाफ या अस्पताल जहां रोगी उपचार प्राप्त कर रहा है, का प्रबंध मंडल या न्यायालय की इजाजत से कोई अन्य व्यक्ति, अक्षम रोगी या ऐसा सक्षम रोगी जिसने सज्ञान विनिश्चय नहीं लिया है, का चिकित्सा उपचार रोकने या हटाने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन कर सकेगा ।

(2) ऐसे आवेदन को मूल अर्जी समझा जाएगा और उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति समय गंवाए बिना इसे खंड न्यायपीठ को समनुदेशित करेगा और उच्च न्यायालय द्वारा यावतरुध्य एक मास के भीतर इसका निपटान किया जाएगा ।

परंतु उपधारा (1) के अधीन अनुज्ञा चाहने के लिए सभी तात्विक विशि-टयों वाले उपरोक्त वर्णित किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय के महारजिस्ट्रार या न्यायिक रजिस्ट्रार को संबोधित पत्र को अविलंत मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाएगा और पत्र को मूल अर्जी समझा जाएगा ।

(3) उच्च न्यायालय का खंड न्यायपीठ, जहां वह आवश्यक समझे, न्यायालय की सहायता के लिए न्यायमित्र नियुक्त कर सकेगा और जहां रोगी का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है, ऐसे रोगी को प्रत्यक्ष विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाएगी ।

(4) उच्च न्यायालय ऐसे तीन विशे-ाज्ञ चिकित्सा व्यवसायियों जिनके नाम धारा 4 के अधीन तैयार पैनल में है या किसी अन्य विशे-ाज्ञ चिकित्सा व्यवसायी यदि आवश्यक समझे से विशे-ाज्ञ चिकित्सा राय अभिप्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और विशे-ाज्ञों को दिए जाने वाले पारितोि-ाक संदाय के लिए समुचित निदेश देगा ।

(5) उच्च न्यायालय, विशे-ज्ञों के पैनल की रिपोर्ट और सगे नातेदारों या विधिक संरक्षक या उनके अभाव में नोटिस देकर ऐसे अन्य व्यक्ति जिन्हें उच्च न्यायालय ठीक समझे, की इच्छाओं और रोगी के सर्वोत्तम हित पर सम्यक् विचार करते हुए, किन्हीं शर्तों के अधीन अनुज्ञा देने या अनुज्ञा देने या देने से इनकार करने का आदेश पारित करेगा ।

(6) चिकित्सा व्यवसायी या अस्पताल प्रबंध मंडल या स्टाफ जो उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार संबद्ध रोगी के चिकित्सा उपचार को रोकता या हटाता है, प्रवृत्त किसी अन्य विधि के होते हुए भी किसी आपराधिक या सिविल दायित्व से मुक्त किया जाएगा ।

10. धारा 9 के प्रयोजनों के लिए गोपनीयता : उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ, जब कभी धारा 9 के अधीन कोई याचिका फाइल की जाती है, यह निदेश दे सकती है कि रोगी और उसके (स्त्री/पुरु-ा) माता-पिता या पति/पत्नी की पहचान, चिकित्सा व्यवसायी और अस्पतालों की पहचान, या धारा 4 में निर्देशित चिकित्सा विशे-ाज्ञ की पहचान या न्यायालय द्वारा परामर्श किए गए विश-ाज्ञों या साक्षियों या उनकी, जिन्होंने न्यायालय में साक्ष्य दिया है, को याचिका के लंबित रहने के दौरान और उसके निपटान के पश्चात् गोपनीय रखा जाएगा और केवल अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों से ही निर्देशित किया जाएगा ।

11. चिकित्सा उपचार के संबंध में अग्रिम चिकित्सीय निदेश और चिकत्सीय पावर आफ अटर्नी का शून्य होना और चिकित्सा व्यवसायी पर आबद्धकर न होना – प्रत्येक अग्रिम चिकित्सीय निदेश (जिसे जीवन वसीयत कहा गया है) या किसी व्यक्ति द्वारा नि-पादित चिकित्सा पावर आफ अटर्नी शून्य होगा और उसका कोई प्रभाव नहीं होगा और किसी चिकित्सा व्यवसायी पर आबद्धकर नहीं होगा ।

12. भारतीय चिकित्सा परि-ाद द्वारा मार्गनिर्देश जारी करना : (1) इस अधिनियम के उपबंधों के संगत भारतीय चिकित्सा परि-ाद समय-समय पर मारणांततः रोग से पीड़ित सक्षम या अक्षम रोगियों के चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटाने के मामले में चिकित्सा व्यवसायियों के मार्गदर्शन के लिए मार्गनिर्देश तैयार करेगी और जारी करेगी ।

(2) भारतीय चिकित्सा परि-द समय-समय पर मार्गनिर्देशों का पुनर्विलोकन और उपांतरण कर सकेगी ।

(3) मार्गनिर्देशों और उनके उपांतरणों को, यदि कोई हो, बेवसाइट पर रखा जाएगा और उस आशय का प्रेस विज्ञप्ति जारी किया जाए ।

****

उपाबद्ध 2
[रिपोर्ट के पैरा 5.1 का प्रतिनिर्देश करे]

मरणांततः रूग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायिं का संरक्षण) विधेयक, 2006

रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों को रोगियों, जो मरणांतकः रूग्ण हैं, से जीवन समर्थन प्रणालियां सहित चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटाने के संदर्भ में दायित्व से संरक्षण के लिए उपबंध करने के लिए एक विधेयक ।

भारत गणराज्य के सत्तावनवें वर्ष में निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :

1. सक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ : (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मरणांततः रूग्ण रोगियों के चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायों का संरक्षण) अधिनियम, 2006 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू और कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत तक है ।

(3) यह उस तारीख से प्रवृत्त होगा जिसे केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा राजपत्र में नियुक्त करे ।

2. परिभा-ाएं : जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(क) 'अग्रिम चिकित्सीय निदेश' (जिसे जीवन वसीयत कहा गया है) से अभिप्रेत है किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई निदेश कि उसे (स्त्री/पुरु-ा) मरणांतकः रूग्ण होता या होती है ।

(ख) 'सर्वोत्तम हित' में किसी ऐसे रोगी का सर्वोत्तम हित सम्मिलित है –

(i) जो अक्षम रोगी है, या

(ii) जो सक्षम रोगी है किन्तु जिसने कोई संज्ञान निर्णय नहीं

लिया है और

रोगी के चिकित्सीय हितों को सीमित नहीं करता किन्तु रोगी के आचार संबंधी, सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और अन्य कल्याणकारी प्रतिफलों को सम्मिलित करते हैं ।

(ग) 'सक्षम रोगी' से ऐसा रोगी अभिप्रेत है जो 'अक्षम रोगी' नहीं है ।

(घ) 'अक्षम रोगी' से ऐसा कोई रोगी जो अवयस्क या विकृतचित्त व्यक्ति है या ऐसा कोई रोगी अभिप्रेत है जो –

(i) उसके चिकित्सीय उपचार के बारे में सज्ञान निर्णय की सुसंगत सूचना को समझने में ;

(ii) उस सूचना को प्रतिधारण करने ;

(iii) उस सूचना का अपने सज्ञान निर्णय की प्रक्रिया के भाग के रूप में उपयोग करने या विचार करने ;

(iv) अपने चित्त या मस्ति-क के कार्य करने में ह्रास के या किसी परेशानी के कारण कोई सज्ञान निर्णय करने में ; या

(v) चिकित्सा उपचार के संबंध में अपने सज्ञान निर्णय (चाहे वाणी, संकेत, भा-ा या किसी अन्य रूप में) अपने सज्ञान निर्णय को संसूचित करने में,

असमर्थ है ।

(ङ) 'सज्ञान निर्णय' से अभिप्रेत है किसी ऐसे रोगी द्वारा चिकित्सीय उपचार के शुरू करने या जारी रखने या बंद करने या हटा लेने के बारे में निर्णय जो समक्ष है और जिसे –

(i) उसके रोक की प्रकृति,

(ii) उपचार का कोई वैकप्लिक रूप जो उपलब्ध हो सकेगा,

(iii) उपचार के उन रूपों के परिणामों, और

(iv) शे-न अनउपचार के परिणामों,

के बारे में सूचित किया जाता है या किया गया है ।"

(च) 'भारतीय चिकित्सा परि-द' से अभिप्रेत है भारतीय चिकित्सा परि-द अधिनियम, 1956 (1956 का 102) के अधीन गठित भारतीय चिकित्सा परि-द ।

(छ) 'चिकित्सा व्यवसायी' से ऐसा चिकित्सा व्यवसायी अभिप्रेत है जिसके पास भारतीय चिकित्सा परि-द अधिनियम, 1956 (1956 का 102) की धारा 2 के खंड (ज) में यथा परिभा-ात कोई मान्यताप्राप्त चिकित्सीय अर्हता है और जो, उस धारा के खंड (ट) में यथा परिभा-ित किसी राज्य चिकित्सा रजिस्टर में नामांकित है ।

(ज) 'चिकित्सीय पावर ऑफ अटर्नी' से अभिप्रेत है किसी व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति (जिसे प्रतिनिधि कहा गया है) को भवि-य में चिकित्सीय उपचार, जो उसे (स्त्री/पुरु-ा) दिया जाना है या नहीं दिया जाना है यदि वह (स्त्री/पुरु-ा) मरणांतकः रूग्ण हो जाता/जाती है और अक्षम रोगी हो जाता/जाती है, के संबंध में निर्णय लेने का प्राधिकार प्रत्यायोजित करता/करती है ।

(झ) 'चिकित्सीय उपचार' से अभिप्रेत है बनाए रखने, प्रत्यावर्तन करने या महत्वपूर्ण कार्यों को बदलने के लिए आशयित उपचार जो, जब मरणांतकः रोग से पीड़ित किसी रोगी को लागू हुआ है, केवल मृत्युकालिक प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए ठीक होगा और इसमें सम्मिलित है –

(i) शल्यक आपरोशन या औ-णि का प्रबंध या किसी अन्य चिकित्सीय प्रक्रिया का नि-पादन करने के रूप में जीवन कार्यम

रखने वाला उपचार ; और

(ii) संवातन, कृत्रिम पो-ाहार और जलयोजन तथा हृदयफुप्फुसीय पुनरूज्जीवन जैसे यांत्रिक और कृत्रिम साधनों का उपयोग ।

(ञ) 'अवयस्क' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 4) के उपबंधों के अधीन वयस्कता प्राप्त नहीं किया गया माना गया है ।

(ट) 'उपशामक उपचार' में सम्मिलित है –

(i) शारीरिक दर्द, पीड़ा, क-टकारी या भावुक और मनो-सामाजिक पीड़ा से राहत के लिए युक्तियुक्त चिकित्सा और नर्सिंग प्रक्रियाओं का उपबंध ।

(ii) भोजन और जल के लिए युक्तियुक्त उपबंध ।

(ठ) 'रोगी' से ऐसा रोगी अभिप्रेत है जो मरणांतकः रोग से पीड़ित है ।

(ड) 'मरणांतकः रोग' से अभिप्रेत है –

(i) ऐसा रोग, चोट या शारीरिक या मानसिक दशा का अपक्षय जो रोगी के लिए नितान्त दर्द और पीड़ा का कारण है और जो युक्तियुक्त चिकित्सा राय के अनुसार संबंधित रोगी की असमय मृत्यु का अपरिहार्य कारण होगी ; या

(ii) जो किसी दृढ़ और अनुत्क्रमणभ्य वर्धी दशा के कारण है जिसके अधीन रोगी के लिए जीवन का अर्थपूर्ण अस्तित्व संभव नहीं है ।

3. <u>सक्षम रोगी द्वारा चिकित्सीय उपचार से इंकार करना और इसकी चिकित्सा व्यवसायियों पर बाध्यकारी प्रकृति</u> :

(1) प्रत्येक सक्षम रोगी को –

(i) स्वयं (स्त्री/पुरु-ा) के चिकित्सीय उपयार के बंद करने या हटाने और प्रकृति को अपना कार्य करने देने, या

(ii) स्वयं (स्त्री/पुरु-ा) के चिकित्सीय उपचार आरम्भ करने या जारी रखने के लिए,

कोई निर्णय लेने का अधिकार ।

(2) उपधारा (1) में निर्देशित जब कोई रोगी अपना (स्त्री/पुरु-ा) निर्णय चिकित्सा व्यवसायी को संसूचित करता है तो, ऐसा निर्णय चिकित्सा व्यवसायी पर बाध्यकारी है ।

परन्तु यदि चिकित्सा व्यवसायी का समाधान हो गया है कि रोगी सक्षम है और यह कि रोगी ने अपनी (स्त्री/पुरु-ा) स्वैच्छा से मुक्त कयावद के आधार पर सज्ञान निर्णय किया है ।

4. चिकित्सीय उपचार के संबंध में अग्रिम चिकित्सीय निदेश और चिकित्सीय पावर ऑफ अटर्नी का शून्य होना और चिकित्सा यवसायी पर बाध्यकारी न होना :

प्रत्येक अग्रिम चिकित्सीय निदेश (जिसे जीवन वसीयत कहा गया है) या किसी व्यक्ति द्वारा नि-पादित चिकित्सीय पावन ऑफ अटर्नी शून्य होगी और उसका कोई प्रभाव नहीं होगा तथा किसी चिकित्सा व्यवसायी पर बाध्यकारी नहीं होगी ।

5. किसी सक्षम रोगी, जिसने कोई सज्ञान निर्णय नहीं लिया है और किसी अक्षम रोगी के संबंध में चिकित्सा व्यवसायी द्वारा चिकित्सीय उपचार को बंद करना या हटाना :

(1) धारा 6 के उपबंधों के अनुपालन के अधीन रहते हुए, कोई चिकित्सा व्यवससायी –

(क) किसी समक्ष रोगी, जिसने कोई सज्ञान निर्णय नहीं है, या

(ख) किसी अक्षम रोगी से,

चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटा लेने का निर्णय ले सकेगा ।

परन्तु यह कि चिकित्सा व्यवसायी की यह राय है कि चिकित्सीय उपचार का बंद किया जाना या हटाया जाना रोगी के सर्वोत्तम हित में है ।

(2) उपधारा (1) के अधीन निर्णय लेते समय चिकित्सा व्यवसायी –

(क) ऐसे मार्गनिर्देशों का पालन करेगा जो धारा 14 के अधीन भारतीय चिकित्सा परि-द द्वारा उन परिस्थितियों के संबंध में, जिनके अधीन विशि-ट रोग के संबंध में किसी रोगी का चिकित्सीय उपचार बंद किया या हटाया जा सकेगा, जारी किए गए है, और

(ख) माता-पिता या संबंधियों (यदि कोई हो) से परामर्श कर सकेगा किन्तु उनके विचारों से बाध्य नहीं होगा ।

6. धारा 5 के प्रयोजनों के लिए चिकित्सा व्यवसायी द्वारा विशे-ज्ञ चिकित्सीय राय का प्राप्त किया जाना :

(1) धारा 5 में निर्दे-नित रोगियों के संबंध में किसी चिकित्सा व्यवसायी द्वारा चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटा लेने का तब तक कोई निर्णय नहीं लिया जाएगा जब तक कि ऐसे चिकित्सा व्यवसायी ने उसके द्वारा धारा 7 में निर्देशित चिकित्सा विशे-ज्ञों के पैनल से उसके द्वारा चयनित तीन चिकित्सा व्यवसायियों, जो रोगी के रोग के संबंध में विशे-ज्ञ हैं, से परामर्श नहीं कर लेता और लिखित में उनकी राय नहीं ले लेता तथा जब तक कि विशे-ज्ञों की बहुमत से राय चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटा लेने

के पक्ष में न हो ।

(2) जहां तीन चिकित्सीय विशे-ज्ञों की राय में भिन्नता है तो वहां बहुमत की राय अभिभावी होगी ।

7. धारा 6 के प्रयोजनों के लिए प्राधिकारी द्वारा चिकित्सीय विशे-ज्ञों का पैनेल तैयार करना :

(1) स्वास्थ सेवा महानिदेशक, केन्द्रीय सरकार और चिकित्सा सेवा निदेशक (या समतुल्य पद धारण करने वाल अधिकारी) प्रत्येक राज्य में, धारा 6 के प्रयोजनों के लिए चिकित्सीय विशे-ज्ञों का एक पैनल तैयार करेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्देशित पैनल में औ-धि की विभिन्न शाखाओं, शल्य चिकित्सा और गंभीर उपचार औ-धि में चिकित्सीय विशे-ज्ञ सम्मिलित होंगे ।

(3) उपधारा (1) में निर्देशित चिकित्सीय विशे-ज्ञों में वे विशे-ज्ञ होंगे जिनका अनुभव बीस व-र्ा से कम का न हो ।

(4) चिकित्सीय विशे-ज्ञों का पैनल में पैनलित करते समय, उपधारा (1) में उल्लिखित प्राधिकारी विशे-ज्ञ की प्रति-ठा को ध्यान में रखेंगे और ऐसे विशे-ज्ञों को पैनल से निकालेंगे जिनके विरद्ध संबंधथ्त राज्य चिकित्सा परि-द में अनुशासनात्मक कार्यवाहियां लंबित हैं और जो व्यवसायिक अवचार के दो-ी पाए गए हैं ।

(5) उपधारा (1) के अधीन तैयार किए गए पैनल को, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार के राजपत्र या राज्य के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा और उक्त प्राधिकारियों की अपनी-अपनी वैबसाइट पर रखा जाएगा तथा पैनल का उपधारा (1) में विनिर्दि-ट प्राधिकारियों द्वारा समय-सयम पर पुनर्विलोकन और उपांतरित किया जा सकेगा और ऐसे उपांतरणों को, यथास्थिति, यथा उपर्युक्त राजपत्र में भी प्रकाशित किया जाएगा, या वैबसाइट पर

रखा जाएगा ।

(6) विशे-ज्ञों के चयन के लिए सुसंगत पैनल उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के लिए पैनल होगा जिनमें चिकित्सीय उपचार किया जा रहा है या प्रस्तावित है या बंद किया जाना या हटाया जाना प्रस्तावित है ।

8. चिकित्सीय व्यवसायी का रजिस्टर बनाना और रीं, माता- पिता आदि को सूचित करना :

(1) चिकित्सा व्यवसायी, जो धारा 3 के अधीन दिए गए किसी सक्षम रोगी के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य है या जो धारा 5 के अधीन कोई निर्णय लेता है, एक रजिस्टर में रिकार्ड रखेगा कि उसका समाधार हो गया है कि –

(क) रोगी सक्षम या अक्षम है ;

(ख) सक्षम रोगी ने चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटाने या आरंभ करने अथवा जारी रखने के संबंध में सज्ञान निर्णय लिया है या नहीं लिया है ;

(ग) ऐसे किसी अक्षम रोगी के अथवा किसी सक्षम रोगी का सर्वोत्तम हित, जिसने अपेक्षित चिकित्सीय उपचार किए जाने या हटाने जाने का सज्ञान निर्णय नहीं लिया है ; और

रोगी की आयु, लिंग, पता और अन्य विशि-टियां तथा धारा 6 के अधीन धारा 7 में निर्देशित पैनल में से उसके द्वारा चयनित तीन विशे-ज्ञों से उसके द्वारा ली गई विशे-ज्ञ सलाह के संबंध में रिकार्ड रखेगा ।

(2) धारा 5 के अधीन चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटाने के पूर्व चिकित्सा व्यवसायी रोगी (यदि उसे भान है), उसके माता-पिता या अन्य संबंधियों अथवा संरक्षक को रोगी के सर्वोत्तम हित में ऐसे उपचार को बंद करने या हटाने के निर्णय के संबंध में लिखित में सूचित करेगा ।

(3) जहां धारा (2) में बताए गए रोगी, माता-पिता या संबंधी चिकित्सा व्यवसायी को धारा 14 के अधीन उच्च न्यायालय में जाने की अपने आशय की सूचना देता है तो, चिकित्सा व्यवसायी पंद्रह दिन तक ऐसे बंद करने या हटाने को स्थगित करेगा और यदि उस अवधि के भीतर कोई आदेश प्राप्त नहीं किए जाते हैं तो वह चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटाने के लिए अग्रसर हो सकेगा ।

(4) ऐसे प्रत्येक रोगी के बारे में रजिस्टर के पृ-ठों की एक फोटोप्रति, सूचना के मामले के रूप में, उसी तारीख को, यथास्थिति, ऐसे स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक या संघ राज्यक्षेत्र के स्वास्थ सेवा निदेशक अथवा राज्य को तुरंत प्रस्तुत की जाएंगी जिसमें चिकित्सीय उपचार दिया जा रहा है या दिया जाना प्रस्तावित है अथवा बंद किया जाना या हटाया जाना प्रस्तावित है और अभिस्वीकृति प्राप्त की जाएगी तथा रजिस्टर की अन्तर्वस्तु चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गोपनीय रखी जाएगी और जनता या मीडिया को प्रकट नहीं की जाएगी ।

(5) उपधारा (2) मं निर्देशित प्राधिकारी, ऐसी फोटोप्रतियां प्राप्त करने के पश्चात्, उक्त फोटोप्रतियों को उक्त प्राधिकारियों के कार्यालयों में एक रजिस्टर में रखेंगे और सूचना को गोपनीय रखेंगे और उन्हें जनता या मीडिया को प्रकट नहीं करेंगे ।

(6) उक्त प्राधिकारी, धारा 7 में धारा 8 में प्रयोजनों के लिए नियम बना सकेंगे और उक्त नियमों को समुचित राजपत्र में प्रकाशित करेंगे या वैबसाइट पर रखेंगे ।

9. <u>सक्षम और अक्षम रोगियों के लिए उपशामक उपचार</u> :

यद्यपि चिकित्सा व्यवसायी ने धारा 3, 5 और 6 के उपबंधों के अनुसार सक्षम रोगियों और अक्षम रोगियों के चिकित्सीय उपचार को बंद कर दिया है या हटा लिया है, ऐसे चिकित्सा व्यवसायी को उपशामक उपचार का प्रबंध करने से विवर्जित नहीं किया जाता है ।

10. कतिपय परिस्थितियों में दांडिक कार्रवाई से सक्षम रोगियों का संरक्षण :

जहां कोई सक्षम रोगी धारा 3 में उल्लिखित परिस्थितियों में चिकित्सीय उपचार से इनकार करता है तो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी ऐसा कोई रोगी उस संहिता या सत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन किसी अपराध का दो-ी नहीं माना जाएगा ।

11. सक्षम और अक्षम रोगियों के संबंध में चिकित्सा व्यवसायियों और उनके निदेश के अधीन कार्य करने वाले अन्यों को संरक्षण :

जहां कोई चिकित्सा व्यवसायी या चिकित्सा व्यवसायी के निदेश के अधीन कार्य करने वाला कोई अन्य व्यक्ति –

(क) सक्षम रोगी के संबंध में, ऐसे रोगी के सज्ञान निर्णय के आधार पर, ऐसे बंद करने या हटा लेने के लिए चिकित्सा व्यवसायी को संसूचित किया है, या

(ख) (i) किसी सक्षम रोगी के संबंध में, जिसने कोई सज्ञान निर्णय नहीं लिया है, या

(ii) किसी अक्षम रोगी के संबंध में,

चिकित्सीय उपचार को बंद करता है या हटा लेता है और चिकित्सा व्यवसायी ऐसे उपचार को बंद करने या हटा लेने के लिए रोगी के सर्वोत्तम हित में निर्णय लेता है तो,

चिकित्सा व्यवसायी या जो उसके निदेश क अधीन कार्य कर है और संबंधित अस्पताल की ऐसी कार्रवाई विधिपूर्ण मानी जाएगी, परन्तु केवल वहां जहां चिकित्सा व्यवसायी ने धारा 5, 6 और 8 का अनुपालन किया है ।

12. उच्च न्यायालय की किसी खंड न्यायपीठ के समक्ष राहत की घो-णा की मांग करने के लिए समर्थकारी उपबंध :

(1) कोई रोगी या उसके (स्त्री/पुरु-ा) माता-पिता या उसके (स्त्री/पुरु-ा) संबंधी अथवा वाद-मित्र ऐसी किसी घो-णा के लिए कि चिकित्सा व्यवसायी या किसी अस्पताल का रोगी का चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटा लेने के संबंध में कोई कृत्य या विलोपन अथवा प्रस्तावित कृत्य या विलोपन विधिपूर्ण है या गैर विधिपूर्ण है और ऐसी अन्तरिम या अन्तिम घो-णओं की, उक्त न्यायालय से जैसा वे उचित समझ सकंगे, मांग के लिए उच्च न्यायालय की किसी खंड न्यायपीठ के समक्ष मूल याचिका फाइल कर सकेंगे ।

स्प-टीकरण : इस धारा और धारा 13 में 'उच्च न्यायालय' से ऐसा न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता में उपचार दिया जा रहा है या बंद करना अथवा हटाना प्रस्तावित है या प्रस्ताव किया जाना है ।

(2) कोई चिकित्सा व्यवसायी या कोई अस्पताल ऐसी किसी घो-णा के लिए कि चिकित्सा व्यवसायी या किसी अस्पताल का रोगी के चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटा लेने के संबंध में कोई कृत्य या विलोपन अथवा प्रस्तावित कृत्य या विलोपन विधिपूर्ण है या गैर विधिपूर्ण है और ऐसी अन्तरिम या अन्तिम घो-णाओं की, उक्त न्यायालय से जैसा वे उचित समझ सकेंगे, मांग के लिए उच्च न्यायालय की किसी खंड न्यायपीठ के समक्ष मूल याचिका फाइल कर सकेंगे ।

(3) उच्च न्यायालय की कोई खंड न्यायपीठ, जब कभी यह आवश्यक समझती है, न्यायालय की सहायता के लिए किसी न्याय-मित्र को नियुक्त कर सकेगी और जहां कोई रोगी का अभिवेदन नहीं किया जाता है वहां ऐसे रोगियों को विधिक सहायता उपलब्ध कराने का निदेश दे सकेगी ।

(4) उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ इस अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रख कर, रोगी, यदि वह (स्त्री/पुरु-ा) सक्षम है, को सुनने के पश्चात् या उसके (स्त्री/पुरु-ा) माता-पिता या संबंधियों अथवा वाद-मित्र या वादार्थ संरक्षक को सुनने के पश्चात्, रोगी का उपचार करने वाले चिकित्सा व्यवसायी या प्राधिकृत अस्पताल और न्याय-मित्र, यदि कोई, तथा जहां आवश्यक या समुचित हो, चिकित्सा व्यवसायी सहित साक्षियों को ऐसा और साक्ष्य प्राप्त करने के पश्चात् ऐसी याचिकाओं का निपटारा करेगी ।

(5) ऐसी मूल याचिकाओं का निपटारा शीघ्रता से और, किसी भी कीमत पर, मूल याचिका के फाइल करने की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर करेगी ।

(6) जहां उच्च न्यायालय का यह विचार है कि अन्तरिम या अन्तिम निदेश पारित किए जाने है और आवश्यक रूपसे कार्यान्वित किए जाने है तो, यह प्रारंभ में ऐसे प्रवर्तनीय आदेश पारित कर सकेगा और उसके पश्चात् शीघ्र उसके कारण देते हुए उनका पालन कर सकेगा ।

(7) उपधारा (1) या (2) के अधीन फाइल की गई किसी याचिका में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दी गई कोई घो-णा या अन्तिम निदेश चिकित्सा व्यवसायी या अस्पताल के विरुद्ध उक्त रोगी के संबंध में, चिकित्सा व्यवसायी या अस्पताल के उक्त कार्य या विलोपन के संबंध में, सभी सिविल या दांडिक कार्रवाइयों में बाध्यकारी होंगे ।

(8) इस धारा के अधीन किसी घो-णा राहत और निदेश के लिए चिकित्सीय उपचार के बंद करने या हटा लेने के लिए उच्च न्यायालय का आश्रय कोई सशर्त पूर्व निर्णय नहीं है यदि ऐसा बंद करना या हटा लेना इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार किया गया है ।

13. धारा 12 और धारा 13 के प्रयोजनों के लिए गोपनीयता :

(1) (i) उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ, जब कभी धारा 12 के अधीन कोई याचिका फाइल की जाती है, यह निदेश देगी कि धारा 6 में निर्देशित रोगी और उसके (स्त्री/पुरु-ा) माता-पिता की पहचान, चिकित्सा व्यवसायी और अस्पतालों की पहचान, या न्यायालय द्वारा परामर्श किए गए विश-ाज्ञों या साक्षियों या उनकी, जिन्होंने न्यायालय में साक्ष्य दिया है, को याचिका के लंबित रहने के दौरान और उसके निपटाने के पश्चात् गोपनीय रखा जाएगा और केवल, जैसा कि खंड (ii) में बताया गया है, अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों से निर्देशित किया जाएगा ।

(ii) मूल याचिका फाइल करने पर यथाशीघ्र, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ रोगी, माता-पिता, डाक्टर, अस्पताल या खंड (i) में निर्देशित विशे-ाज्ञों और साक्षियों को अथवा चिकित्सीय उपचार से संबंधित अन्य व्यक्तियों की पहचान के लिए अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों को चयन कर कोई आदेश करेगी और यह निदेश करेगी कि न्यायालय की आगे की कार्यवाहियों में, लॉ रिपोर्टों के प्रकाशनों में या प्रिंट या इलैक्ट्रानिक मीडिया में या श्राव्य-दृश्य मीडिया में, याचिका के दौरान और निपटान के पश्चात्, विशि-ट रोगी, व्यक्ति या अस्पताल का निर्देश करने के लिए वर्णमाला के उन अक्षरों का उपयोग किया जाएगा और यह कि रोगी, व्यक्ति या अस्पताल की पहचान प्रकट नहीं की जाएगी तथा उच्च न्यायालय, जहां आवश्यक हो, सुनवाई या सुनवाई के किसी भाग को बंद कमरे में करेगा ।

(iii) किसी व्यक्ति या निकाय के लिए रोगी, व्यक्ति या अस्पताल अथवा अन्य विशि-टियां या उपखंड (i) और (ii) में निर्देशित मामलों की पहचान किसी लॉ रिपोर्ट या प्रिन्ट या इलैक्ट्रानिक मीडिया में या श्राव्य-दृश्य मीडिया में प्रकाशन में निर्देश करना विधिपूर्ण नहीं होगा ; और

उपधारा (2) याचिका के लंबित रहने के दौरान और उसके निपटान के पश्चात् न्यायालय की कार्यवाहियों को प्रकाशित करते समय केवल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अभिहित वर्णमाला के अक्षरों का निर्देश किया जाएगा ।

(iv) उपखंड (iii) के उपबंधों का उल्लंघन करने में कोई व्यक्ति या निकाय उपखंड (ii) के अधीन न्यायालयों के आदेशों का उल्लंघन करने के लिए न्यायालय की अवमानना का दायी हो सकेगा और उसके अनुसार सुनवाई की जाएगी ।

(v) खंड (i) से (iv) तक में किसी उपबंध के होते हुए भी, जब उच्च न्यायालय द्वारा घो-णा या निदेश दिए जाते हैं तो उन्हें रोगी, माता-पिता, चिकित्सा व्यवसायी, अस्पताल या संबंधित विशे-ज्ञ को संसूचित किया जाना है, रोगी, व्यक्ति या अस्पताल की सही पहचान का निर्देश करना अनुज्ञेय होगा और ऐसी संसूचनाएं मुहरबंद लिफाफे में इन पतों पर परिदत्त की जाएंगी ताकि उच्च न्यायालय द्वारा की गई घो-णा या निदेश विशि-ट रोगी के संदर्भ में समझा और कार्यान्वित किया जा सके ।

(vi) उच्च न्यायालय धारा 12 और इस धारा के उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए प्रक्रिया के नियम बना सकेगा ।

(2) मीडिया सहित कोई व्यक्ति या निकाय, उन मामलों में जिनमें वे उपधारा (1) के अधीन उच्च न्यायालय में नहीं गए हैं, रोगियों के नाम और अन्य सूचना, जिनसे रोगी,संबंधियों, डाक्टर, अस्पताल या विशे-ज्ञों की पहचान प्रकट हो सकेगी, प्रकाशित नहीं करेगा और यदि इन उपबंधों का उल्लंघन किया जाता है तो विधि के अनुसार सिविल या दांडिक कार्रवाई द्वारा उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकेगा ।

14. भारतीय चिकित्सा परि-द द्वारा मार्गनिर्देश जारी करना :

(1) इस अधिनियम के उपबंधों के संगत भारतीय चिकित्सा परि-नद समय-समय पर मारणांतकः रोग से पीड़ित सक्षम या अक्षम रोगियों के चिकित्सीय उपचार को बंद करने या हटाने के मामले में चिकित्सा व्यवसायियों के मार्गदर्शन के लिए मार्गनिर्देश तैयार करेगी और जारी करेगी ।

(2) ऐसे मार्गनिर्देशों को तैयार करते समय, भारतीय चिकित्सा परि-नद चिकित्सा व्यवसायियों के संगत चिकित्सा विशे-नों या निकायों से, जिन्हें रोगियों के चिकित्सीय उपचार बंद करने या हटा लेने की दक्षता है या गंभीर उपचार औ-धि में अनुभव वाले विशे-नज्ञों या निकायों से परामर्श कर सकेगी ।

(3) भारतीय चिकित्सा परि-नद समय-समय पर मार्गनिर्देशां का पुनर्विलोकन और उपांतरण कर सकेगी ।

(4) मार्गनिर्देशों और उनके उपांतरणों को, यदि कोई हो, भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा और उनकी वैबसाइट पर रखा जाएगा ।

****